प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार १९५३

मूल्य
आठ आना

मुद्रक
रामप्रताप त्रिपाठी
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

प्रस्तावना

सर्वोदय योजना के सिद्धान्तो का यह विवरण सर्वोदय प्लैनिंग कमेटी की ओर से प्रकाशित किया जा रहा है। इसलिए यहा सर्वोदय प्लैनिंग कमेटी के विपय में कुछ शब्द लिख देना आवश्यक है।

१९३७ में जब काग्रेस ने पद ग्रहण किया तब काग्रेस के आदर्शो और घोषणाओ के अनुसार राष्ट्र-निर्माण की एक योजना तैयार करने का प्रश्न स्वभावत उसके सामने आया। काग्रेस ने इस प्रयोजन के लिए एक नेशनल प्लैनिंग कमेटी नियुक्त की। उन अवस्थाओ को तो सब जानते ही है जो कि काग्रेस के मार्ग में रुकावट बन कर खडी हो गई। १९३९ मे काग्रेस ने पद त्याग दिया। १९४६ में उसने इसे पुन ग्रहण कर लिया। १९४७ मे देश स्वतन्त्र हो गया।परन्तु स्वतत्रता, देश का विभाजन और उसके कारण उत्पन्न नई समस्याए अपने साथ लेकर आई। और फलत सामाजिक और आर्थिक योजना बनाने का प्रश्न पीछे जा पडा।

ऑल इंडिया काग्रेस कमेटी ने एक कमेटी आर्थिक कार्यक्रम (इकौनोमिक प्रोग्राम) बनाने के लिए नियुक्त की। इस कमेटी की रिपोर्ट को काग्रेस ने जयपुर-अधिवेशन में स्वीकृत कर लिया।देश की अन्य राजनीतिक पार्टियों और सगठनो ने भी अपने सुझाव और योजनाए पेश की। परन्तु आर्थिक अवस्था बहुत जल्दी-जल्दी बिगडती गई।

जो रचनात्मक कार्यकर्ता गाधीजी के सर्वोदय आदर्शो से प्रेरित थे और सीधा उनके मातहत काम कर चुके थे, वे इन सब घटनाओ को देख रहे थे और ग्रामो में रचनात्मक कार्यमे प्राप्त अपने दीर्घकालिक अनुभव के आधार पर एक योजना बनाने का यत्न कर रहे थे। उन्होने अनुभव किया कि अब समय आ गया है जब कि देश की परिवर्तित अवस्थाओ में रचनात्मक कार्यक्रम और रचनात्मक कार्यकर्ताओ के भाग और स्थान को पुन स्पष्ट कर दिया जाय। इस उद्देश्य से और गाधीजी के आदेश से फरवरी १९४८

में रचनात्मक कार्यकर्ताओ का एक सम्मेलन वर्धा में बुलाने का निश्चय किया गया। गाधीजी स्वय इस सम्मेलन में सम्मिलित होकर मार्ग प्रदर्शित करने वाले थे, परन्तु ईश्वर की इच्छा कुछ और ही थी।

इसके पश्चात् देश की परिस्थिति में सुधार के कोई लक्षण दिखाई नहीं दिये, प्रत्युत परिस्थिति वद से बदतर होती गई। चारो ओर निराशा और असफलता की भावना व्याप्त हो गई। जो रचनात्मक कार्यकर्ता सर्वोदय के आदर्शो मे विश्वास करते थे वे निरन्तर यह अनुभव करने लगे कि हमें एकत्र होकर देश की वर्तमान कठिनाई को हल करने के लिए और अपनी सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था का स्थायी आधार पर निर्माण करने के लिए अपनी एक योजना उपस्थित करने का यत्न करना चाहिए। इसलिए नवम्बर १९४९ के प्रथम सप्ताह में रचनात्मक कार्यकर्ताओ की एक छोटी-सी कान्फ्रेन्स वर्धा में श्री काका कालेलकर के सभापतित्व में की गई। उसमें निर्णय किया गया कि इस कान्फ्रेन्स के निश्चयो के अनुसार अपनी नीति का एक वक्तव्य तैयार करके कान्फ्रेन्स के अगले अधिवेशन में पेश किया जाय जो कि २२ और २३ दिसम्वर १९४९ को बुलाया जाय और उसमें रचनात्मक कार्यकर्ताओ को अधिक सख्या में निमन्त्रित किया जाय तथा कान्फ्रेन्स की स्वीकृति के पश्चात् यह वक्तव्य गाधीजी के द्वितीय मृत्यु-दिवस ३० जनवरी को प्रकाशित करके देश की जनता के सामने उपस्थित कर दिया जाय।

इस निश्चय के अनुसार सर्वोदय आर्थिक सम्मेलन २२ और २३ दिसम्वर १९४९ को वर्धा में श्री काका कालेलकर के सभापतित्व में हुआ। इसमें देश के सब भागो मे लगभग २०० रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मिलित हुए। प्रत्येक धारा पर पूरी तरह विवाद करने के पश्चात् सम्मेलन ने अपने सामने उपस्थित सर्वोदय योजना के सिद्धान्तोंका विवरण स्वीकृत कर लिया और अध्यक्ष को अधिकार दिया कि वह अन्य विशेषज्ञो और कार्यकर्ताओ से सलाह करने के पश्चात् इसे ३० जनवरी १९५० को प्रकाशित कर दे जिससे कि यह सर्वोदय के आदर्शो को भली भाति प्रकट कर सके।

इस सम्मेलन ने अध्यक्ष से यह भी प्रार्थना की कि वह एक कमेटी नियुक्त कर दें जो कि इस विवरण को रचनात्मक सगठनो से कार्यान्वित करवावे और काग्रेस से स्वीकृत करवा कर लोकमत को इसका पक्षपाती वनावे। तदनुसार एक सर्वोदय प्लैनिंग कमेटी निम्न सदस्यो की वनाई गई :—

श्री काका कालेलकर, श्री जे० सी० कुमारप्पा
श्री शकरराव देव, श्री प्रफुल्लचन्द्र घोप
श्री श्रीकृष्णदास जाजू, श्री गुलजारीलाल नन्दा
श्री आर० के० पाटिल, श्री जी० रामचन्द्रन
श्री जी० एम० सत्यनारायण, श्री जुगतराम दुवे, श्री के० मित्र
श्री आर० एस० धोत्रे
श्री झवेरभाई पटेल } मत्री

इस कमेटी की वैठक दिल्ली में जनवरी के द्वितीय सप्ताह मे हुई और उसने इस विवरण को प्रकाशन के लिए अन्तिम रूप दिया।

इस सवध में सव पत्रव्यवहार का पता यह है —

सर्वोदय योजना समिति
नई दिल्ली

—मत्री

सर्वोदय-योजना

: १ :

सर्वोदय-योजना के सिद्धांत

मानव-सभ्यता का इतिहास स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए किए गये संघर्षों का इतिहास है। प्राच्य दर्शन-शास्त्र का मत है कि मानव की उन्नति और विकास का लक्ष्य स्वतन्त्रता (मुक्ति अथवा मोक्ष) है। वह अपनी वासनाओ और कामनाओ के बन्धन से मुक्त होकर ही जन्म और मृत्यु के बन्धन से मोक्ष (स्वतन्त्रता) प्राप्त कर सकता है। मानव की समस्त महत्वाकाक्षाओ और प्रयत्नो का सार यही है कि वह स्वतन्त्र (बन्धन-मुक्त) किस प्रकार हो सकता है।

पुरातन मानव-समाज में मानव का उन्नत तथा विकसित होने का मार्ग, जाति, रीति-रिवाज, कठोर-परम्परा और छूत-छात की विघ्न बाधाओ से अवरुद्ध था। इनके कारण समाज मे अनेक विषमताए और अनौचित्य उत्पन्न होकर प्रगति का मार्ग बाधा-पूर्ण हो गया था। जहा व्यक्ति के हाथ-पाव बधे हुए हो वहा समष्टि की भी प्रगति नही हो सकती। बाद को राजा-महाराजा, अमीर-उमरा, पण्डित-पुरोहित और मुखिया तथा मालिक भी व्यक्तियो की स्वतन्त्रता का अपहरण करने लगे। साहित्य, कला और विज्ञान भी पुरातन विचारो और परम्पराओ से प्रभावित हो गये। व्यक्तियो के लिए प्रत्येक बात का निश्चय स्थायी रूप से समाज में उनकी हैसियत देखकर किया जाने लगा। मानव न केवल सामाजिक परिस्थितियो का, अपितु रोग, दरिद्रता, दुर्भिक्ष, भूकम्प और बाढ आदि उन प्राकृतिक शक्तियो का भी दास बन गया जिनको वह अपने वश में नही कर सका था। व्यक्तियो, सम्पत्तियो और विचारो का स्वतन्त्र सचार समाप्त हो गया।

वर्तमान नवयुग का प्रारम्भ ही समाज, परिवार, धर्म, राजा, अमीर-उमरा, जात-विरादरी और मुखिया-मालिको के विविध बन्धनो को खोलने तथा प्रकृति की शक्तियो को उपयोगी धाराओ में बाध लेने के साथ होता है। आज के समाज में मानव का मानव से सम्बन्ध हैसियत देखकर नही, प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति की स्वतन्त्र सहमति से निश्चित किया जाता है। आज धार्मिक क्षेत्र मे आचार और विचार की प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता है। राजनीति में लोकतान्त्रिक सस्थाओ का विकास हो चुका है और उनके कारण शासित ही शासक वन गये हैं। इस चहुमुखी स्वतन्त्रता के आधार पर ही इस युग के आदर्शवादियो, कवियो, विचारको और सुधारको ने अपने स्वप्नो के महल खडे किये है और निरन्तर प्रगति के भरोसे स्थायी शान्ति की आशाए लगाई जा रही है।

परन्तु मानव के दुर्भाग्य-वश, पुराने वन्धन खुलने के साथ-साथ ही अनेक नये वन्धन फिर लग गये। इनके कारण समाज मे नई विषमताओ और नये अन्यायो का जन्म हो गया। विज्ञान ने प्रकृति को वश में करके और नये भौगोलिक अनुसन्धानो के साथ मिलकर औद्योगिक क्रान्ति का युग प्रवर्तित किया। इसके कारण अभाव और न्यूनता के स्थान पर समृद्धि और प्रचुरता दिखाई देने लगी। परन्तु यह समृद्धि उत्पादन के एक सकीर्ण क्षेत्र तक ही सीमित रही, जिसका परिणाम यह हुआ कि मानव-समाज पुन समृद्ध सम्पन्नो तथा अभाव-ग्रस्त विपन्नो और यन्त्रो के स्वामियो तथा वेतन के दासो मे विभक्त हो गया। धनकी इस विषमता के कारण व्यक्तियो की हैसियतो मे स्थायी विषमता आ गई। पुराने वन्धन और पुराने लगाव तो नष्ट ही हो चुके थे, अव उनका स्थान एकमात्र स्वार्थ और सम्पत्ति के वन्धनो ने ले लिया। इतना ही नही, ऐसे विचारक और दार्शनिक भी निकल आये जो इन सकीर्ण स्वार्थो की व्याख्या मानवता और परोपकार की भाषा मे करने लगे और हमे विश्वास दिलाने लगे कि समस्त सदाचार की नीव ही स्वार्थ-प्रेरित बौद्धिक विचार-धाराओ पर रखी गई है।

धन की विषमता का प्रभाव केवल आर्थिक जीवन पर ही नही पडा, वह राजनीतिक और कुछेक अल्प-वर्ग सास्कृतिक जीवन को भी कलुषित

करने लगा। केवल धन का स्वामी होने के कारण शिक्षा, संस्कृति और सामाजिक तथा राजनीतिक प्रभाव के लाभो का उपभोग करने लगे। राजनीतिक क्षेत्र मे कानून के सामने जन-मात्र की समानता और मत की स्वतन्त्रता केवल दिखावे की वस्तुए रह गई। लोकतान्त्रिक सिद्धान्त उदार होने के स्थान पर सकीर्णतर होते गये और लोकतन्त्र का अस्थि-पजर-मात्र अवशिष्ट रह गया। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे कच्चे माल, बाजारो के विस्तार, पूजी लगाने के अवसरो और सस्ते मजदूरो की खोज ने बडे-बडे पूजीपतियो और तथाकथित लोकतन्त्रीय साम्राज्यवादियो की सृष्टि कर डाली। ये लोग मिलकर औद्योगिक दृष्टि से अवनत एशिया और अफ्रीका की जनता का शोषण करने लगे। शक्तिशाली प्रतिस्पर्धी राष्ट्रो में भूमि की लोलुपता के कारण नये-से-नये अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष होने लगे और उनमें सफल होने के लिए विज्ञान का उपयोग नित-नये तथा अधिक से अधिक विनाशक शस्त्रास्त्रो के आविष्कारार्थ किया जाने लगा। यह होड अब परमाणु-बम तक पहुँच चुकी है। प्रत्येक नया युद्ध विश्व-व्यापी होता दीखने लगा है। जिस विज्ञान ने प्रकृति की शक्तियो को वश में करके उन्हें मानव की सेवा में प्रवृत्त कर दिया था, उसने ही अपने नये कठोर नियम बनाकर समाज को कार्य और कारण की नवीन परम्पराओ मे जकड दिया। परिणाम यह हुआ कि उद्योगो और व्यवसायो में केन्द्रीभूत होने की प्रवृत्ति बढकर मानव विज्ञान का स्वामी नही रहा, दास बन गया। शीघ्र ही यह प्रत्यक्ष हो गया कि हमारे समाज में निर्णय हमारी (व्यक्तियो की) इच्छाओ, अभिलाषाओ या आवश्यकताओ के अनुसार नही, अपितु भौतिक परिस्थितियो के अनुसार किये जाते है। समाजकी प्रेरक शक्तिया अपनी ही है। इनके कारण ही मार्क्स ने यह सिद्धात स्थिर किया कि "समाज-विज्ञान की मौलिक समस्या उस नियम का पता लगाना है जिसके अनुसार समाज उस अवस्था को उत्पन्न कर देता है जो कि बाद को स्वय उसका स्थान ग्रहण कर लेती है।" वह इस परिणाम पर पहुचा कि "मानव की सत्ता का (होने न होने का) निश्चय उसकी ज्ञान-शक्ति नही करती, प्रत्युत उसकी सामाजिक सत्ता उसकी ज्ञान-शक्ति का निश्चय करती है" (कैपिटल)। मार्क्स इस सामाजिक

ज्ञान-शक्ति की व्याख्या आर्थिक भाषा मे करता है। वह कहता है कि समाज का आर्थिक सगठन, विशेषत उत्पादन के साधन और उनका स्वामित्व, ही समस्त सामाजिक विकास का आधार है। और यह सामाजिक विकास न केवल हमारी सस्कृति, कला, विज्ञान और दर्शन का, अपितु व्यक्तियो के चरित्र का भी निर्माण करता है। सम्भवत मार्क्स ने समाज की प्रगति के नियमो को समझ लिया था। उसके अनुसार मानव की इच्छा और प्रयत्नो के बावजूद ये नियम लागू होते ही है। मानव तो अधिक-से-अधिक इतना ही कर सकता है कि मानवी इतिहास ने अपने जिस हिसामय क्रान्ति का होना पहले से निश्चित कर दिया है उसकी आवश्यकता और अनिवार्यता को समझ कर उसकी 'प्रसव-वेदना को न्यून' कर दे।

मार्क्स चाहता था कि पूजीपतियो की जिस साम्राज्यवादी समाज-व्यवस्था ने व्यक्ति को सर्वत्र दास बना रक्खा है और लोकतन्त्र को असम्भव कर दिया है उसका हिसामय क्रान्ति द्वारा नाश करके उसके स्थान पर ऐसी समाज-व्यवस्था की प्रतिष्ठा की जाय जिसकी नीव न्याय, समानता, व्यक्ति के अधिकारो ओर लोकतन्त्र पर रक्खी गई हो। वह व्यक्ति की स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र का पक्षपाती था, यह तो इसीसे स्पष्ट है कि वह सरकार (शासन-तन्त्र) का विनाश चाहता था। परन्तु, मार्क्स के अनुयायी अपना काम भिन्न ही प्रकार कर रहे है। सोवियत रूस मे सरकार (शासन-तन्त्र) की समाप्ति के कोई चिह्न दृष्टिगोचर नही होते, यद्यपि उसका राज-तन्त्र मार्क्स-वाद के अनुसार सगठित किया गया बतलाया जाता है। इसके विपरीत वहा की सरकार सर्वशक्तिमान् ओर सर्वव्यापक है। न केवल राजनीतिक और आर्थिक जीवन पर उसकी प्रभुता है, अपितु नैतिक, सास्कृतिक और बौद्धिक जीवन के अतिरिक्त वह कला, साहित्य, दर्शन और विज्ञान को भी अपने ही नियन्त्रण मे रखती है। इसके अतिरिक्त हम ऐसे एकाधिकार पूर्ण शासन भी देखते है जिसमे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और लोकतन्त्र को नष्ट करके उनकी नीव राष्ट्र, जाति और भौगोलिक राजनीति आदि के विचारो तथा कुछेक विशिष्ट योग्य व्यक्तियो के शासन करने के अधिकार पर रक्खी गई है। कम्यूनिज्म, नात्सीज्म और फासिज्म आदि

ये सब एकाधिकारपूर्ण वाद, वैज्ञानिक और निर्णायक (डिटर्मिनिस्ट) होने का दावा करते हैं। वे न केवल यह बतलाते हैं कि भूत और वर्तमान कालो में सामाजिक और राजनीतिक शक्तिया किस प्रकार काम करती रही हैं, अपितु उनके विषय में भविष्यवाणी भी करते हैं। उनकी व्यवस्था मे व्यक्ति का कोई स्थान नही है। उसे तो वे सामाजिक गठन का एक वाह्य रूप मात्र अथवा सामाजिक शरीर का एक जीव-कोश (सेल) मात्र मानते हैं। उनकी दृष्टि में इसकी समाज से भिन्न कोई सत्ता नही। पूजी-वादी समाज-व्यवस्था में जीवन को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैयक्तिक और सामूहिक आदि नाना पृथक विभागो में वाटकर उनमे से प्रत्येक के ऐसे आचार और परम्पराए नियत कर दिये जाते हैं जो एक दूसरे के विरोधी होते है। एकाधिकारपूर्ण वाद केन्द्र-प्रधान होते हैं। वे एक प्रकार के रहस्यमय भौतिकवाद मे विश्वास रखते है। क्या व्यक्ति और क्या समष्टि सबके समान आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन का आधार वे एक ही सिद्धात को मानते हैं। और वह है आर्थिक,जातीय या राष्ट्रीय दृष्टि से शक्ति या प्रभुता प्राप्त करने की आकाक्षा। पूजीवाद और एकाधिकारवाद, दोनो ही विचार-धाराओ मे, जीवन के विभिन्न पहलुओ में समन्वय, सम्बन्ध अथवा परस्परा-श्रय की कोई गुजायश नही है। उनके विभिन्न दृष्टिकोणो का भी लक्ष्य एक ही है—आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का केन्द्रीकरण। अति केन्द्रीकरण से वैयक्तिक स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है। पूजीवाद का आरम्भ तो स्वतन्त्रता से हुआ था, परन्तु उसने स्वतन्त्रता को ही नष्ट कर दिया। अनियन्त्रित पूजी का परिणाम ही अनिवार्यत यह होता है। मुक्तद्वार व्यापार और व्यापार के स्वाभाविक प्रवाह में हस्तक्षेप न करने की नीतियो ने उत्पादन के केन्द्रीकरण के साथ मिलकर* मोनोपलियो, कम्बाइनो

---

*मोनोपली = किसी वस्तु के व्यापार या उत्पादन का एक ही व्यक्ति अथवा संगठन के हाथ में चला जाना। कम्बाइन और कार्टल, दोनो शब्दों का भाव एक ही है। इनका अभिप्राय है अनेक व्यक्तियों या कम्पनियों का एकत्र सङ्गठन, जिससे कि प्रति-स्पर्धा को समाप्त किया जा सके।

और कार्टेलों को जन्म दिया और जब समाज में इन तीनो के कारण धन की तथा सामर्थ्य की अति विषमता हो गई तब लोकतन्त्र का विचार प्राय अर्थ-हीन हो गया। इस परिस्थिति की प्रतिक्रिया का ही परिणाम 'कम्यूनिज्म' (साम्यवाद) हुआ, जिसने कि न्याय, समानता और व्यक्ति की स्वतन्त्रता के नाम पर उत्तराधिकार-हीन लोगो की वकालत करते हुए हिंसामय उपायो तक का समर्थन किया। परन्तु उसने आर्थिक और राजनीतिक अधिकारो को सरकार के हाथ में केन्द्रित करके व्यक्ति की स्वतन्त्रता को तो नष्ट कर ही दिया, साथ ही सदाचार के महत्व कोभी गौण कर दिया, जिसके बिना व्यक्ति का विकास हो ही नही सकता। 'कम्यूनिज्म' के समान, सब प्रकार की 'फासिज्म' से भी स्वातन्त्र्य का और व्यक्तित्व का नाश हो जाता है।

बस, यही गाधीजी का सर्वोदय अपना वह आदर्श लेकर प्रविष्ट होता है, जिसमें कि व्यक्ति और समष्टि के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सदाचारिक जीवनो का एकत्र समन्वय करके दिखलाया गया है। गाधीजी जीवन को न तो ऐसे पृथक् विभागो में बाटते थे जिनमें कि भलाई बुराई का और कर्तव्य-कर्मों का विचार एक दूसरे से भिन्न हो और न वह उसे ऐसा एक मानते थे जिसमें कि विविधता की सर्वथा समाप्ति हो जाय। उनका दृढ विश्वास था कि मनुष्य के सब कार्यों में ऐसा परस्पर सम्बन्ध रहता है कि उनसे आपसे आप आन्तरिक एकता की सृष्टि हो जाती है। परन्तु यह एकता सदाचार के मौलिक नियमो पर आधारित होती है। इसी कारण वह 'डिटर्मिनिस्ट' (व्यक्ति की इच्छा के विरोधी, निश्चित कारणों और आवश्यकताओ के वशवर्ती) नही थे। उनका यह विश्वास नही था कि मानव इतिहास का एक ही निश्चित और अपरिवर्तनीय मार्ग है और सुधारक स्थिर रहे तो उस "नियम का पता लगा सकता है जिसके अनुसार समाज उस अवस्था को उत्पन्न कर देता है जो कि बाद को स्वय उसका स्थान ग्रहण कर लेती है।" न उनका यह विश्वास था कि मानव की "सामाजिक सत्ता ही उसकी ज्ञान-शक्ति का निश्चय करती है।" उनका मन्तव्य तो यह था कि जिस प्रकार व्यक्ति का चरित्र-गठन हो सकता है

उसी प्रकार किसी समाज-व्यवस्था द्वारा समाज का भी किया जा सकता है। समाज का अथवा इतिहास का कोई पूर्व-निर्धारित अपरिवर्तनीय मार्ग नही है। सामाजिक सस्थाओ का निर्माण और गठन व्यक्तियो के ही आचार-विचार, आदर्श और जीवन से होता है। व्यक्ति ओर समाज की एक दूसरे पर क्रिया और प्रतिक्रिया होती है। व्यक्ति ओर समाज में पहले कौन हुआ, इस विचार में समय खोना ऐसे ही निरर्थक है जैसे कि यह सोचना कि अण्डे और मुर्गी में से पहले किसका जन्म हुआ। इसी कारण वह न तो व्यक्ति की उपेक्षा करते थे और न प्रकृति के भौतिक साधनो की। गाधीजी भौतिक साधनो से घृणा नही करते थे। वह मानते थे कि जिस प्रकार मनुष्य की आत्मा को उन्नत करने के लिए उसका शरीर एक साधन है उसी प्रकार ऊचा उठने के लिए समाज का गठन भी एक साधन है। प्रकृति के साथ मनुष्यो के व्यवहार मे, गाधीजी आर्थिक साधनो को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते थे, क्योकि उनके जीवन और सामाजिक सस्थाओ का निर्माण उनके द्वारा ही होता है। परन्तु उनको महत्त्वपूर्ण मानते हुए भी वह मार्क्स-वादियो के समान सब-कुछ उन्हें ही नही समझते थे। हाँ, उनकी उपेक्षा करने से जो हानि हो सकती है, उसे वह अवश्य स्वीकार करते थे।

यह सर्वविदित है कि भारत के सार्वजनिक जीवनो मे गाधीजी का प्रवेश आर्थिक कारणो से ही हुआ। भारतीय जनता की दरिद्रता देखकर उनका मन अत्यधिक विचलित हो गया। वह बहुधा कहा करते थे कि मैं दरिद्र लोगो को ईश्वर का साक्षात्कार चावल की मुट्ठी मे ही करा सकता हूँ। चम्पारन, खेडा, बोरसद और बारडोली आदि मे उनके आन्दोलनो का आधार आर्थिक समस्याए ही थी। औद्योगिक झगडो मे भाग उन्होने आर्थिक कारणो से ही लिया था। १९३० मे भी, जबकि वह किसी ऐसे क़ानून की तलाश मे थे जिसे कि वह स्वय सुगमता से भग कर सके और जनता से भी वैसा करने के लिए कह सके, तब उन्होने ग़रीबो के चुटकी-भर नमक को ही चुना, जिसपर कि उस समय भारी टैक्स लगा हुआ था। जब उन्होने अपना रचनात्मक कार्य-क्रम प्रस्तुत किया तब उन्होने राष्ट्र के भौतिक पुनरुत्थान में केन्द्र का स्थान खादी और ग्राम-उद्योगों को ही दिया।

वह न केवल आर्थिक जीवन का महत्त्व स्वीकार करके उसे उसका उचित स्थान प्रदान करते थे, वरन् वह यह भी मानते थे कि माल के उत्पादन तथा वितरण के साधनो का सदाचार, राजनीति और समाज पर भारी प्रभाव पडता है। वह ऐसी समाज-व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे जो सत्य और अहिंसा पर आधारित हो। वह अनुभव करते थे और दूसरों को भी अनुभव कराते थे कि ऐसी समाज-व्यवस्था का निर्माण पूजीवादी पद्धति में नही हो सकता, क्योकि उसकी नीव ही श्रमिको के नैतिक तथा भौतिक दोहन पर रखी जाती है। गाधीजी सब प्रकार के दोहन को, वह चाहे धन द्वारा हो चाहे अधिकार द्वारा, हिंसामय मानते थे। जहा हिंसा होती है वहा असत्य आ ही जाता है। वह चाहते थे कि माल का उत्पादन और वितरण, अर्थात् समाज के आर्थिक जीवन का सगठन, इस प्रकार हो कि उसमें हिंसा और असत्य का व्यवहार न करना पडे। इसके लिए ही उन्होंने कृषि और उद्योग के विकेन्द्रीकरण की, यदि आवश्यकता हो तो उन्हे सहकारिता के आधार पर सगठित करने की, योजना बनाई थी। मार्क्स-वादियो के समान, गाधीजी को, पूजीवादी समाज-व्यवस्था का अन्त करने के लिए रक्तमय क्रान्ति आवश्यक नही जान पडती थी।–वह दूसरो के श्रम से लाभ उठाने वालो को सम्पत्ति के स्वामित्व से वञ्चित करने के लिए हिंसा के प्रयोग के पक्षपाती नही थे। न वह यह चाहते थे कि उत्पादन के उन सब साधनो को एकाधिकारी राज्य की नौकरशाही के सुपुर्द कर दिया जाय जिनके विषय में ऐसी कल्पना की जाती है कि पूजीवादी उनके मालिक बनकर फालतू धन कमाते अथवा श्रमिको का दोहन करते हैं। वह तो पूजीवाद को उसकी जड में ही, उत्पादन-व्यवस्था में ही, समाप्त कर देने के पक्षपाती थे। माल के उत्पादन का विकेन्द्रीकरण हो जाय तो न कोई मशीनो का मालिक रहेगा न कोई गुलाम। कारीगर अपने घर में जिन औजारो या छोटी मशीनो का प्रयोग करेगा उनका वह यदि मालिक बन जाय तो भी किसी प्रकार की आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक विषमता उत्पन्न नही होगी। कारीगर जिन औजारो से काम लेता है वे पूरी तरह

काम को भी वह भली-भाँति नही समझता। उत्पादन के विकेन्द्रीकरण से पूजी ऐसे मुट्ठी-भर लोगो के हाथ में जमा नही होने पाती, जिनकी सख्या निरन्तर घटती जाती है। इस व्यवस्था का परिणाम आप-से-आप आर्थिक समानता होता है। और यह समानता लोकतन्त्र मे अति सहायक होती है। पूजीवादी व्यवस्था मे तो केन्द्रीभूत उत्पादन लोकतन्त्र का घातक होता ही है, कम्यूनिस्ट (साम्यवादी) व्यवस्था में भी उत्पादन का स्वामित्व और प्रवन्ध राज्य के हाथ मे केन्द्रित हो जाने का परिणाम लोकतन्त्र पर वही होता है। दोनो व्यवस्थाए व्यक्तित्व का पूरा-पूरा अन्त कर देती है। सम्भव है कि कम्यूनिस्ट (साम्यवादी) व्यवस्था में व्यक्तियों को अपनी आवश्यकता की वस्तुए शीघ्र और सस्ती मिलती हो, परन्तु उसमें ऐसा उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण करके ही होता है। और स्वतन्त्रता के विना राजनीति, सस्कृति या सदाचार किसी क्षेत्र में कोई उन्नति नही हो सकती।

एक युक्ति यह दी जाती है कि उत्पादन के विकेन्द्रीकरण से माल कम वनता और रहन-सहन का दर्जा नीचा रहता है। गाधीजी ऐसी किसी सम्भावना से नही डरते थे, क्योकि उन्हें भारत की करोडो की आवादी और उसकी भयकर वेरोजगारी का सदा ध्यान रहता था। वह कहते थे कि यदि जड-यन्त्रोको काम देकर चेतन मानवको निकम्मा कर दिया जाय तो समाज का सदाचार गिर जायगा। परन्तु जहा आवश्यकता हो वहा यान्त्रिक शक्ति से चलने वाले ऐसे यन्त्रो के प्रयोग में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी जिनसे श्रम की वचत होती हो और जिनका सव लोग वाट कर उपयोग कर सकें। यह वात विजली की शक्ति से हो सकती है। इसलिए वह विजली के प्रयोग के विरोधी नही थे। गांधीजी रहन-सहन का दर्जा एक हद से ऊपर उठाने के पक्षपाती नही थे। उनका विचार था कि यद्यपि भौतिक साधनो से औसत आदमी को अपनी वौद्धिक तथा सदाचारिक उन्नति करने मे सुगमता होती है, तथापि वह उनका गुलाम (वशवर्ती) वन जाता है और एक हद से वढ जाने पर उनकी सदाचारिक उन्नति रुक जाती है।

तो भी गाधीजी मानते थे कि वर्तमान परिस्थितियो में केन्द्रीभूत वडे उद्योगो की एक दम समाप्ति नही की जा सकती। आना-जाना, माल का ढोना

(परिवहन), सदेश-सचार और अन्य कुछ मूल उद्योगो को बडे कारखानो में केन्द्रीभूत करना ही पडेगा। परन्तु इस प्रकार के केन्द्रीभूत उद्योगो का सचालन और नियन्त्रण, सार्वजनिक कारपोरेशनो द्वारा, और आवश्यकता हो तो राज्य द्वारा, सर्वसाधारण के लाभार्थ ही किया जाना चाहिए।

अपनी नवीन समाज-व्यवस्था को समानता, स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की नीव पर दृढतापूर्वक आधारित करना हो तो राजनीति के अतिरिक्त आर्थिक क्षेत्र मे भी विकेन्द्रीकरण करना पडेगा। व्यक्तियो का दोहन (उनसे दूसरो के लाभार्थ काम लेने की प्रक्रिया) केवल त्रुटिपूर्ण आर्थिक सगठनों द्वारा ही नही, त्रुटिपूर्ण राजनीतिक सगठनो द्वारा भी होता है। केन्द्रीभूत लोकतन्त्र मे नौकरशाही की ओर एकाधिकारवादिता की प्रवृत्तिया उत्पन्न हो जाती है। गाधीजी देश का विभाजन ऐसे प्रदेशो मे करना पसन्द करते थे जो अपनी आर्थिक आवश्यकताए स्वय पूरी करने के अतिरिक्त अपनी राजनीतिक व्यवस्था भी आप ही कर सके। वह प्रत्येक प्रदेश को एक छोटे गण-तन्त्र के रूप मे देखना चाहते थे। उनका विश्वास था कि लोकतन्त्र का वास्तविक अभिप्राय ही अपने मामलो की व्यवस्था आप कर सकने की स्वतन्त्रता है और उस पर भलीभाति आचरण छोटी इकाइयो में ही हो सकता है। इन इकाइयो को अपने मामलो के शासन का कार्य सीधा अपनी देख-रेख मे करना चाहिए। राष्ट्र ऐसी अर्द्ध-स्वतन्त्र इकाइयो का एक प्रकार का सघ होगा।

गाधीजी द्वारा पुरस्कृत समाज-व्यवस्था का सक्षिप्त रूप यही है। इस प्रकार की समानता पर आधारित और आर्थिक तथा राजनीतिक दोहन से मुक्त समाज-व्यवस्था मे ही औसत आदमी स्वतन्त्र सदाचारपूर्ण और आध्यात्मिक जीवन बिता सकता है। अन्यथा, जिस प्रकार धन और सामर्थ्य पर कुछ अल्प-सख्यको का एकाधिकार है उसी प्रकार सदाचारपूर्ण और आध्यात्मिक जीवन भी कुछेक साधु और विद्वान् लोगो की ही अपवाद-रूप बात रह जायगा।

: २ :

सर्वोदय के आदर्श और उद्देश्य

इसलिए आदर्श क्रमश एक ऐसे अहिंसक समाज का सगठन है जिसमें कि मानव वैयक्तिक तथा सामाजिक पूर्णता प्राप्त कर सके, जिसमे जीवन की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति की दृष्टि से अधिकतम प्रादेशिक स्वावलम्बिता हो और जो अपने सामाजिक, सदाचारिक तथा सास्कृतिक लक्ष्यो की प्राप्ति सहोद्योग पूर्वक करता हो।

अहिंसक समाज की ओर हमारी प्रगति का कदम हिंसा का प्रयोग समाप्त कर देने की हमारी सामर्थ्य पर निर्भर करेगा। हिंसा प्राय निम्न तीन रूपो में प्रकट होती है —

(१) दोहन में अर्थात् मनुष्य का मनुष्य द्वारा उपयोग किया जाने में,

(२) अपराध करने और दण्ड देने मे, और

(३) युद्ध में।

इसलिए समाज का जीवन एक परिवार के नमूने पर ढालने का यत्न करना चाहिए, जिससे कि अपनी आवश्यकता के लिए एक दूसरे का उपयोग करने की (दोहन की) भावना समाप्त हो जाय, बुराई का प्रतिकार भलाई से किया जाय, अपराधो को चिकित्सनीय रोग माना जाय और युद्धो को झगडे तय करने का साधन समझना छोड दिया जाय।

समाज मे दोहन की समाप्ति और जीवन में पूर्णता की प्राप्ति के लिए रहन-सहन की सादगी अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार के समाज-निर्माण के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति जीवनोपयोगी साधारण वस्तुए बनाने के प्रयोजन से थोडा-बहुत शारीरिक श्रम नित्य करे। प्रदेशो को अपनी भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति मे अधिकाधिक स्वावलम्बी होना चाहिए। हमारा मत तो यह है कि जो भी वस्तु विकेन्द्रीकृत उत्पादन के

क्षेत्र में आती हो उसे केन्द्रीभूत उद्योग (इंडस्ट्री) द्वारा उत्पन्न न किया जाय और केन्द्रीभूत उद्योगो की सीमा निर्धारित कर दी जाय। प्रादेशिक स्वावलम्विता से भाईचारे और मानव-सम्वन्धो की भावना घटती नही, प्रत्युत अधिकाधिक वढती और व्यापक ही होती है। इसलिए लोगो को अन्त - प्रादेशिक, सामाजिक, सदाचारिक और सास्कृतिक प्रयत्नो मे बुद्धि-पूर्वक तथा जिम्मेवारी के साथ भाग लेने के लिए अधिकाधिक शिक्षित और सज्जित करना चाहिए।

मानव के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने के लिए प्रादेशिक स्वावलम्विता अति आवश्यक है। परन्तु उसमे (प्रादेशिक स्वावलम्विता में) भी आर्थिक और राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा धन, अधिकार और आवादी को एक स्थान पर केन्द्रित न होने देने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

ऐसा समाज जात-पात और वर्ग या श्रेणी पर आधारित नही होगा और न इसी कारण उसमे सवके लिए उन्नति का समान अवसर होगा। इससे मनुष्यो, पशुओ और प्रकृति के सव साधनो का पूरा-पूरा और उचित उपयोग हो सकेगा और प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति-भर उत्पादन-वृद्धि का प्रयत्न करते हुए जीवन का आवश्यक स्तर प्राप्त करने में पूरी तरह सहायक हो सकेगा।

सम्पत्ति—जिस सम्पत्ति का उत्पादन समाज करेगा उस पर नियन्त्रण भी समाज का रहेगा। हा, उसका स्वामी कोई व्यक्ति भी हो सकता है और समाज भी। परन्तु वर्तमान प्रतिस्पर्धा-पूर्ण अर्थचक्र का स्थान सहोद्योग पर आधारित सामाजिक अर्थ-व्यवस्था ले लेगी।

खेती की जमीन का मालिक जमीन जोतने वाला होगा, परन्तु उसके नियमो को निर्धारित समाज करेगा।

विकेन्द्रीकृत उद्योगो में उत्पादन के औजारो पर स्वामित्व या तो व्यक्तियो का होगा और या सहोद्योग सस्थाओ का।

केन्द्रीभूत उद्योगो पर स्वामित्व समाज का होगा और उनका सचालन सरकार, पब्लिक कॉर्पोरेशनो और सहोद्योग-समितियो मे से किसी के द्वारा होगा।

उपभोग

राष्ट्रीय आय—सम्पत्ति पर अधिकार की उक्त व्यवस्था, अधिकतम प्रादेशिक स्वावलम्बिता के आधार पर उत्पादन के सगठन और विकेन्द्रीकरण का परिणाम यह होगा कि मानव-शक्ति का उपयोग उत्कृष्टतम लाभ के लिए किया जायगा और आबादी में बिना काम किये पेट भरने वालो की सख्या काम करने वालो की तुलना में बहुत घट जायगी। इसके अतिरिक्त, भूमि पर बोझ घट जाने के कारण प्रति व्यक्ति पीछे उत्पादन का परिमाण बढ जायगा।

हमारा विश्वास है कि लोगो की अन्न, वस्त्र, निवास और जीवन की उचित आवश्यकताए पूरी करने के लिए देश मे धन का उत्पादन पर्याप्त हो जायगा। और सरकार का लक्ष्य चूंकि शासन न्यूनतम करने का तथा नीति राष्ट्र के शासन-कार्य में अहिंसा का अधिकाधिक व्यवहार करने का होगा इसलिए उसकी भी आर्थिक आवश्यकताए बिना विशेष कठिनाई के पूरी हो जायगी। भौतिक सुखो की प्राप्ति के अतिरिक्त. लोगो का सन्तोष अधिक होगा और इसी कारण सर्वत्र सुख और समृद्धि के भाव दृष्टिगोचर होंगे।

'स्वदेशी' के सिद्धान्त में जो पडोसी-धर्म अर्थात् पडोसी की सेवा का भाव निहित है वह अहिंसा का ही एक अग है, और देश की वर्तमान आर्थिक दशा ऐसी है कि उसमें कठोर जीवन बिताने की अत्यन्त आवश्यकता है, इसलिए राष्ट्र जिस किसी वस्तु के बिना निर्वाह कर सके उसका विदेशो से आयात और जिन वस्तुओ की यहा न्यूनता हो उनका यहा से निर्यात नही होने देना चाहिए।

जीवन-मान—न्यूनतम आय इतनी होनी चाहिए कि उससे भोजन, वस्त्र और निवास की आवश्यकताए उचित-रूपेण पूरी हो जाय। आज के बाजार-दरो को देखते हुए एक औसत परिवार के लिए यह राशि १००) मासिक रखी जा सकती है। ऐसा यत्न करना चाहिए कि इस न्यूनतम लक्ष्य पर हम यथाशीघ्र पहुँच जाय। आर्थिक जीवन के सभी विभागो में आय की असमानता को समान कर देना चाहिए। इस प्रकार की समाज-व्यवस्था में

न्यूनतम और अधिकतम आयो का अन्तर इतना नही होना चाहिए कि वह जनता की विचार दृष्टि में चुभता रहे।

आयो की निर्धारित अधिकतम सीमा का पालन सभी आर्थिक वर्गो द्वारा दृढता से कराया जाना चाहिए और किसी के भी पास इतनी सम्पत्ति नही रहने देनी चाहिए कि उससे नियत अधिकतम से भी अधिक आय हो। इस समय सब आयो का अधिकतम परिमाण वर्तमान न्यूनतम का २० गुणा नियत करके, उचित अवधि के भीतर, उसे न्यूनतम के १० गुणा पर ले आना चाहिए।

इस प्रकार की व्यवस्था पर्याप्त होनी चाहिए कि शिक्षण और चिकित्सा की सेवा सब के लिए स्वल्प मूल्य पर सुलभ हो। सब के लिए पुस्तकालयो, छात्रो तथा उच्च विद्यार्थियो के लिए अनुसन्धान-प्रयोगशालाओ, चिकित्सको के लिए चिकित्सा-यन्त्रो और सबके लिए आने-जाने आदि की सुविधाओ की भी ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि उन पर स्वामित्व तो समाज का रहे परन्तु उनके कारण किसी वर्ग की कार्य-कुशलता में कोई अन्तर न आने पावे।

उत्पादन

उत्पादन-व्यवस्था को निम्न सिद्धान्तो का पालन करना चाहिए

१ उससे धन का वितरण व्यापक और समान हो।

२ सुख-सम्भोग की वस्तुए तैयार करने से पहले उसे लोगो की आवश्यकताए पूरी करनी चाहिए।

३ उसे कार्यकर्ताओ की सब प्रकार की योग्यताओ का उपयोग करने तथा उनका व्यक्तित्व विकसित करने का साधन रहना चाहिए।

४ उससे समाज में शान्ति और सुख की वृद्धि होनी चाहिए।

५ उसे धन का उत्पादन यथा-शक्ति कुशलता से करना चाहिए।

कृषि

उत्पादन की योजनाओ का केन्द्र कृषि को और पशु-पालन सरीखे कृषि से सम्बद्ध उद्योगो को रखना चाहिए।

यद्यपि हमारे देश के विभिन्न राज्यो में जमीन-बन्दोबस्त, खेती की हालत (कृषि की परिस्थितिया) और उसके तरीके विभिन्न प्रकार के है, परन्तु अकुशलता, उत्पादन की न्यूनता और खेतो की इकाइयो की लघुता हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सर्वत्र एक-सी है।

भूमि-सुधार—देश के जमीन-बन्दोबस्त मे व्यापक सुधार किये बिना खेती की पैदावार और कुशलता में कोई स्थायी उन्नति नही हो सकती। इसलिए जमीदारी की समाप्ति यथा शीघ्र की जानी चाहिए। परन्तु जमीदारी-प्रथा समाप्त हो जाने के पश्चात् भी खेती न करने वाले लोगो का ध्यान जमीन की ओर बडी सख्या मे लगा रहेगा। हमारा खयाल है कि भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बिचौलियो का कोई स्थान नही होना चाहिए और समाज द्वारा निर्धारित नियमो के अनुसार भूमि पर स्वामित्व उसे जोतने वालो का ही रहना चाहिए। विधवाओ, नाबालिगो (अवयस्को) और इसी प्रकार के अन्य असमर्थो के अतिरिक्त किसी को भूमि किराये पर उठाने की इजाजत नही होनी चाहिए। काश्तकार केवल उनको मानना चाहिए जो खेती के काम में स्वय शारीरिक श्रम करे और उसमें अन्य प्रकार भाग ले।

जो लोग निरन्तर छ. वर्ष से जमीन जोत रहे है उनको तुरन्त ही कानून द्वारा रक्षित काश्तकार मान लेना चाहिए। खुश्क और तर इलाको मे लगान क्रमश पैदावार के $\frac{1}{5}$ और $\frac{1}{6}$ भाग से अथवा मालगुजारी के दुगने से अधिक नही होना चाहिए। लगान का निश्चय काश्तकार की सहूलियत देखकर करना चाहिए और समय-समय पर नीचे वर्णित जमीन-अदालत द्वारा उसकी जाच होते रहना चाहिए। तमाम बेदखलिया रोक देनी चाहिए। स्थानीय जमीन-अदालतो को अधिकारो का एक लेखा तैयार करना चाहिए। इन अदालतो में सर्वोदय-आदर्श, काश्तकारो और भू-स्वामी किसानो, तीनो के प्रतिनिधि रहने चाहिए। भूमि के स्वामी को मौका दिया जायगा कि वह अपनी भूमि के उतने भाग पर पुन अधिकार कर ले जितनी उसको अपनी जोती हुई खेती को लाभदायक बनाने के लिए आवश्यक हो। काश्तकार को भी अधिकार होना चाहिए कि वह जमीन को उस उचित

मूल्य पर खरीद ले जो कि उचित लगान तय करने के लिए नियत जमीन-अदालत द्वारा निर्धारित किया जाय। इस खरीद मे ग्रामीण-ऋण-एजेन्सी को भी सहायता देनी चाहिए ।

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का नमूना—वर्तमान ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था इतनी उलझी हुई है और उसे जिन समस्याओ का सामना करना पडता है वे इतनी विविध है कि भूमि के उपयोग की किसी एक पद्धति से आज की सब आवश्यकताए पूरी नही हो सकती। इसलिए देश की ग्राम्य-व्यवस्था करते हुए ऐसी नीति अपनानी चाहिए कि उससे ऊपर बतलाई गई उत्पादन-व्यवस्था के सब सिद्धान्तो का पालन हो जाय। खेत चाहे अनेक प्रकार के हो, परन्तु हमें जो ग्राम-व्यवस्था करनी है उसके आधार-भूत सिद्धान्त एक-से रहने चाहिए।

खेतों के परिणाम—खेतो के प्रकार उनके छोटे-बडेपन के अनुसार विविध होने चाहिए। उनके परिमाण को देख कर उनकी तीन श्रेणिया बनाई जा सकती है—लघुतम, स्वावलम्बी और विशालतम।

मूल विचार यह है कि स्वावलम्बी खेतो का परिमाण विविध प्रदेशो की खेती का हिसाब-किताब देखकर निम्न सिद्धान्तो के अनुसार निश्चित किया जाय —

१ किसान उसके सहारे अपने रहन-सहन को उचित स्तर पर रख सके।

२ उससे एक औसत परिवार को और कम-से-कम एक जोडी-बैल को पूरा-पूरा काम मिल सके। पूरे-पूरे काम का मतलब यह नही है कि किसी को फुरसत या स्त्रियो को अपनी उन्नति का अवसर भी न मिले। उनको फुरसत का और अपनी उन्नति का पर्याप्त समय मिलना चाहिए।

स्वावलम्बी से भी छोटे खेतो का बन्दोबस्त फिर करने की आवश्यकता है। उनकी सख्या और अनुपात इतना अधिक है और वे इतनी दूर-दूर तक फैले हुए है कि उनका पुन बन्दोबस्त करना बन्दोबस्त महकमे की सगठन सामर्थ्य से बाहर की बात है। इस कारण खेतो का एक लघुतम परिमाण

निश्चित कर देना पडेगा। ये खेत स्वावलम्बी खेतो से छोटे और इन अर्थो में अ-स्वावलम्बी होगे कि उनके सहारे किसान अपना रहन-सहन एक उचित स्तर पर नही रख सकता, परन्तु वे इतने छोटे नही होगे कि उनमे खेती हो ही न सके और उनकी पैदावार का ठीक-ठीक हिसाब तक न रखा जा सके।

विशालतम खेत—जो लोग खेती के लिए ज़मीन चाहते है उनकी सख्या की तुलना मे उपलब्ध ज़मीन थोडी है और आजकल जिस ढग से खेती की जाती है उसके लिए आवश्यक व्यवस्था के और पूजी के साधन औसत किसान की सामर्थ्य से वाहर नही है, इसलिए विशालतम खेतो का परिणाम स्वावलम्बी खेत का तिगुना नियत किया जा सकता है।

हम यह भी समझते है कि विशालतम खेत का परिमाण नियत करते हुए ऊपर अधिकतम आय की सीमा निर्धारित करने के विषय मे जो कुछ कहा जा चुका है उसे ध्यान मे रखना चाहिए।

नि सन्देह उन सयुक्त परिवारो के विषय में जिनके सब सदस्य खेती के काम मे शारीरिक श्रम करते है और समाज-सेवा करने वाली सस्थाओ के विषय मे अपवाद करने ही पडेगे।

खेतों के प्रकार

मालिक किसान—लघुतम से विशालतम तक की गणना मे आने वाले सब खेतो की भूमि पर स्वामित्व, उचित नियमो के अनुसार, ज़मीन स्वय जोतने वालो का होगा। इस प्रकार के पारिवारिक खेतो को अपनी पैदावार बेचने और खेती के लिए ऋण लेने मे ग्राम की मल्टि-पर्पस कोऑपरेटिव (विविध काम करने वाली सहकारी सस्था) की सहायता विना किसी अपवाद के अवश्य लेनी ही चाहिए।

भूमि पर स्वामित्व की ऐसी व्यवस्था आज के युग की सामाजिक तथा आर्थिक आवश्यकताओ से सगत नहीं है जिसमें कि मालिक अपनी भूमि का सदुपयोग स्वेच्छा के अनुसार कर सके। इसलिए भूमि पर अधिकार किसान और समाज मे बटे हुए होने चाहिए। किसान को निम्न शर्तो के अनुसार

ज़मीन की जोत हस्तान्तरित करने और वश-परम्परा-पूर्वक अपने परिवार वालो को देने का स्थायी अधिकार होगा —

१ वह ज़मीन किराये पर न उठावे।

२ ज़मीन हस्तान्तरित करते हुए वह पहले के उस नियम का पालन करे जो कि उचित अधिकारी द्वारा नियत कर दिया गया हो और ज़मीन का मूल्य उचित ही ले, अत्यधिक न ले।

३ वह अच्छे किसान की कसौटियो पर खरा उतरे और लैण्ड-कौन्सिल (ज़मीन-पचायत) द्वारा समय-समय पर नियत फस्लो की योजना का पालन करता रहे।

जो अधिकार सारे समाज के है उनका प्रयोग अपनी विविध एजेन्सियो द्वारा लैण्ड-कौंसिल करेगी। इन एजेन्सियो का आधार गॉव-पचायत होगी, जिसका निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा। पडती भूमि, गाँव के अन्य स्थानो, तालावो और जगलो आदि गाव की सम्मिलित जायदाद पर नियन्त्रण पचायत का होगा। किसानो से ज़मीन-लगान वसूल करने की जिम्मेवारी भी उसकी ही होगी।

सहकारी साझे की खेती—लघुतम खेतो से छोटे सव खेतो को साझे की सहकारी खेती में सगठित कर देना चाहिए। इसका यह मतलव नही है कि लघुतम से छोटे सव खेतो को मिलाकर एक ही ऐसा वडा सहकारी खेत वना दिया जाय कि उसके कारण किसान अपना व्यक्तित्व खोकर अपनी उत्पादक सूझ-बूझ को भी भुला वैठे। जव कभी लघुतम खेतो के मालिक आवश्यक सख्या मे मिलकर विशालतम परिमाण का खेत वनाने को तैयार हो जाय तभी सहकारी खेती आरम्भ की जा सकती है। किसानो में यदि साझे की सहकारी खेती के विरुद्ध कोई विचार हो तो उन्हें इस कार्यक्रम पर धीरे-धीरे अमल करके, प्रचार द्वारा समझा बुझा कर, उदारता-पूर्वक सरकारी सहायता देकर और जमीन का इन्तजाम करने वाले महकमे मे विशेषरूपेण तैयार किए हुए कर्मचारियो से इस काम को अधिक न्यायपूर्वक करवा कर दूर किया जा सकता है। इस योजना का आरम्भ पहले कुछ चुने हुए स्थानो पर, सोच समझ कर वनाई हुई अवस्था

के अनुसार, ज़मीन-बन्दोबस्त के साथ सलग्न प्रोविन्शियल कोऑपरेटिव फार्मिग बोर्ड के नियन्त्रण में करना चाहिए।

सामूहिक खेती—बे-जमीन के श्रमिको की ज़मीन की भूख शान्त करने के लिए और बडे परिमाण की यान्त्रिक खेतियो की आर्थिक सम्भावनाओ की परीक्षा करने के लिए परीक्षण के रूप मे नौतोड (रिक्लेम्ड) भूमियो पर बे-ज़मीन श्रमिको से सामूहिक खेती करवा कर देखी जा सकती है। ट्रैक्टर आदि यन्त्रो का प्रयोग ज़मीन को तोडने सरीखे आवश्यक कार्यो तक ही सीमित रखना चाहिए। आरम्भ मे आवश्यक सहायता ज़मीन-बन्दोबस्त के महकमे को करनी चाहिए और जैसे-जैसे श्रमिक खेती का इन्तज़ाम करना सीखते जाय वैसे-वैसे लैण्ड-कौन्सिल का नियन्त्रण हटते जाना चाहिए।

अनुसन्धान और परीक्षण के खेत—लैण्ड-कौन्सिल के निरीक्षण और व्यवस्था में ऐसे अनेक खेत रहेंगे जिनमें कि खेती के अच्छे तरीके, अच्छे किस्म के बीज और सस्ते तथा अच्छे औज़ार तैयार करने के परीक्षण होते रहेंगे।

जमीन का इन्तजाम—इस समय ज़मीन के इन्तज़ाम और उससे सम्बद्ध अन्य व्यवस्थाओ मे सबसे बडी कमी यह है कि उसमें गाव की आर्थिक आवश्यकताओ और समस्याओ को हल करने पर निरन्तर और सुसगत दृष्टि नही रखी जाती। उसमे हमदर्दी और सहानुभूति का अभाव है। दफ़्तरी कार्यवाइयो के कारण हरेक काम मे बहुत देर लगती है। ज़मीन का इन्तज़ाम विविध कर्तव्यो को बाट कर किया जाना चाहिए। उसका सगठन एक ही रखकर उसकी प्रादेशिक इकाइया अनेक होनी चाहिए। उनमे सर्वोदय दृष्टिकोण वाले व्यक्तियो के अतिरिक्त विशेषज्ञ और किसानो के प्रतिनिधि भी होने चाहिए। इस समय जो अधिकार और जिम्मेदारियां गावो की आर्थिक समस्याओ को हल करने वाले अनेक महकमो को सौंपी हुई हैं वे सब इनके सुपुर्द होनी चाहिए। इस शासन-व्यवस्था के कर्तव्यो का विकेन्द्रीकरण करने के लिए अधिकतम प्रयत्न करना चाहिए और सारे सगठन की नीव मे जो इकाइया हो उन्हे अधिकाधिक अधिकार देने चाहिए।

कई ग्राम-मण्डलो को मिलाकर प्रादेशिक सगठन बना दिये जायगे और उनकी आधारभूत इकाई गाव होगी।

इन सबके ऊपर एक केन्द्रिक लैण्ड-कौन्सिल होगी जो कि प्रादेशिक सगठनो की प्रतिनिधि होगी। वह फसलो की योजना बनाएगी और दुर्लभ साधनो की प्राथमिकता का क्रम निश्चित करेगी। प्रादेशिक लैण्ड-कौन्सिलें विधि इकाइयो की प्रतिनिधि होगी और उनके कर्तव्य तथा जिम्मेदारिया अधिक विस्तृत होगी। प्रादेशिक लैण्ड-कौन्सिलो की सहायता करने के लिए ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था करने वाले, सहकारी खेती के प्रबन्धकर्ता और मजदूरी तथा मूल्य-निर्धारक आदि अनेक बोर्ड होगे।

रूरल इकोनोमिक सिविल सर्विस—(ग्रामीण अर्थ-चक्र का सेवक-मण्डल)—जबतक देश भूमि सम्बन्धी काम करने वाले ऐसे व्यक्तियो की एक सेना सगठित नही करेगा जिनकी भावना जिहादी हो तबतक न तो जनता के लिए पर्याप्त खाद्य उत्पन्न हो सकेगा और न पशुओ के लिए पर्याप्त चारा। हमें ऐसे मनुष्यो की बडी सख्या में आवश्यकता है जो कि निम्न स्तर के लोगो की गरीबी, निर्धनता, निरक्षरता और अस्वास्थ्य की परिस्थितियो मे ही रह कर उनके सुख दुख मे भाग ले सकें। इन सब लोगो को सच्चा सेवक, दृढ सकल्पवान और असीम धैर्यशाली होना चाहिए। इस कार्य के लिए ऐसे स्त्री-पुरुषो की भरती करनी चाहिए जो साधारणतया शिक्षित होने के अतिरिक्त उन्नित दृष्टिकोण वाले हो। उन्हें कृषि-सहकारी-आन्दोलन और कृषि-सम्बन्धी उद्योगो के सगठन की शिक्षा देकर रूरल इकोनोमिक सिविल सर्विस (ग्रामीण अर्थ-चक्र का सेवक-मण्डल) में सम्मिलित करने से पहले कुछ समय तक अभ्यास के लिए सहकारी और सम्मिलित खेतियो पर रखना चाहिए।

प्रादेशिक लैण्ड-कौन्सिलें अपनी योजनाएं बनाने मे और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के विकास तथा प्रबन्ध मे सर्वथा स्वतन्त्र होगी। परन्तु कुछ समय तक इनकी साधारण नीति को राज्य की सरकार द्वारा स्वीकृत कराना आवश्यक होगा।

कौन्सिलें अपने कर्तव्यो का पालन स्वतन्त्रता मे और प्रभावशाली रूप

में कर सके इसके लिए उनकी आय के साधनो का स्वतन्त्र होना आवश्यक है।

कृषि की योजनाएं—फसलो की योजनाए वनाने के लिए देश के मनुष्यो और पशुओ, दोनो की सब आवश्यकताओ का हिसाव लगा लेना आवश्यक है। ऐसा करते हुए सन्तुलित भोजन के सिद्धान्त और रहन-सहन के उचित स्तर की रक्षा का ध्यान रखा जाना चाहिए। इस योजना का लक्ष्य यह होना चाहिए कि प्रत्येक प्रदेश अपनी कृषि-सम्वन्धी आवश्यकताओ के लिए अधिकाधिक स्वावलम्बी होता जाय। प्रत्येक प्रदेश की उत्पादन-सामर्थ्य और आवश्यकताओ को समस्त देश की आवश्यकताओ के साथ समन्वित करना और यह ध्यान रखना चाहिए कि केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की शक्तियो में सन्तुलन रहे। योजनाओ का निर्माण आरम्भ मे गाँवो की वस्तियो मे किसानो की सभाओ में किया जायगा। प्रादेशिक कौन्सिलें उसमे आवश्यक सुधार कर देंगी और उनके अन्तिम रूप का निश्चय लैण्ड-कौन्सिल मे होगा। परन्तु इन योजनाओ की रचना करते और उन पर आचरण करते हुए लोकतन्त्र तथा विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तो का ध्यान रखा जाएगा।

किसानों का ऋण और ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था—खेती की पैदावार का मूल्य ऊंचा हो जाने पर भी अधिकतर ग्रामीण जनता का ऋण का वोझ घटा नही है। किसानो का और वे-जमीन के मजदूरो का ऋण, उनकी अदा करने की सामर्थ्य और ऋण के औचित्य के अनुसार अनिवार्य रूप से कम कर दिया जाना चाहिए। ऊंचे मूल्यो का लाभ केवल फालतू उत्पादन करने वालो को हुआ है। और वे ग्रामीण जनता का वहुत छोटा भाग है। ग्रामीण जनता में अधिकतर लोग अपनी आवश्यकता से भी कम उत्पादन करने वाले और वेजमीन मजदूर है। इसलिए वाजार-दर ऊंचे जाने का उन पर प्रतिकूल प्रभाव पडा है। सब महाजनो को रजिस्टर कर के उनके लेन-देन का नियन्त्रण होना चाहिए। इसके साथ ही उचित दर पर ऋण मिल सकने की अन्य व्यवस्था होनी चाहिए। यह काम प्रादेशिक लैण्ड मौर्टगेज वैंको (जमीन रहन रखकर ऋण देने वाले वैंको) और विविध काम करने वाली सहकारी

सस्थाओ द्वारा होना उचित है। जहा तक सम्भव हो वहा तक ऋण नियन्त्रित *विशेष प्रयोजन के लिए और माल के रूप में देना चाहिए।*

ऋण देने वाली सस्थाओ की उन्नति मे बडी बाधा यह है कि ऐसे किसानो की सख्या बहुत बडी है जिनकी साख कुछ नही है, और केवल साख वाले किसानो को ऋण देने की योजना से समस्या का स्पर्शमात्र होता है। इसलिए किसानो को ऋण देने की आदर्श व्यवस्था में यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि साख का अभाव खेती की आवश्यकताए पूरी करने में बाधक न बने। जबतक ऊपर वर्णित नीति के अनुसार गाँव का जीवन सर्वथा बदल न जाय तबतक इस बात का ध्यान में रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण रहेगा। ग्राम के व्यापार और अर्थ-व्यवस्था की कोई भी नई योजना बनाते हुए यह ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक होगा कि बाज़ार नियन्त्रित रहे और खेती की फालतू पैदावार मल्टी-पर्पस (विविध काम करने वाली) सहकारी सस्थाओ की मार्फत बेची जाय और लाइसेंस-प्राप्त मालगोदाम रहे।

खेत-मजदूर—गत कुछ वर्षो में यद्यपि खेत-मजदूरो की मजदूरी रुपए-आने-पाइयो मे ऊची हो गई परन्तु उनके जीवन-निर्वाह की दृष्टि से उनकी मजदूरी अब भी अपर्याप्त है। हमारे देश मे अब भी ऐसे अनेक स्थान है जहा खेत-मजदूर मनुष्यो से हीन स्तर का जीवन बिताते है। उन्हें खेती के गुलामो की अवस्था में जीवन बिताना पड़ता है। इस बहुसख्यक जनता की दासता को समाप्त करने और उसे न्यूनतम जीवन-मान प्राप्त कराने के लिए तुरन्त यत्न किया जाना चाहिए। खेत-मजदूर की सबसे बडी समस्या बेरोजगारी और कम रोज़गार है। इसलिए इन लोगो की बडी सख्या को तुरन्त ही सामूहिक खेतियो और खेती-सबधी अन्य उद्योगो में लगा देना चाहिए। इनको फिर बसाने की कोई भी योजना विकेन्द्रीकृत अर्थ-व्यवस्था मे ही पूर्ण हो सकती है।

हमारे विशाल देश मे बिखरे हुए खेत-मजदूरो को सगठित करने का यत्न होना चाहिए जिससे कि उनका दोहन और दुरुपयोग बन्द हो जाय। जब ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का नियन्त्रण ग्रामीण जनता के हाथ में चला जायगा तब इस प्रकार का दोहन बहुत कम और अपवाद रूप मे रह जायगा।

खेती की पैदावार के मूल्य—ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को स्थिर करने के लिए फसलो और पशुओ का बीमा करने की कोई योजना होनी चाहिए। इसके साथ ही खेती और कारखानो के मालो के मूल्यो में सन्तुलन रखने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। आज तो खेती और गांव की पैदावार की कीमतें नियत करते हुए बहुत कुछ मनमानी से काम लिया जाता है। इस व्यवस्था में शहर गाव को दो प्रकार से लूटते है खेती की पैदावार का मूल्य शहर का खरीदार निश्चित करता है और कारखानो का जो तैयार माल गाव में जाकर विकता है उसका मूल्य शहर का दुकानदार निश्चित करता है। यदि किसानो का जीवन उचित स्तर पर लाना हो और खेत-मजदूरो का जीवन न्यूनतम उचित स्तर पर रखना हो तो कीमतें तय करने मे होने वाले इस अन्याय की तुरन्त समाप्ति की जानी चाहिए। जवतक ऐसा न किया जायगा तवतक गांव के वास्तविक रोग का अर्थात् धन और बुद्धि के गांव मे शहर की ओर प्रवाह का अन्त नही होगा।

उद्योग-व्यवसाय

हमारी अर्थ-व्यवस्था के उद्योग और व्यवसाय के क्षेत्र में मार्ग-दर्शक सिद्धान्त यह होना चाहिए कि जिम किसी वस्तु का उत्पादन विकेन्द्रीकृत उद्योग द्वारा किया जा सके उमे केन्द्रीकृत उद्योग द्वारा उत्पन्न न किया जाय।

औद्योगिक उत्पादन का सगठन ऊपर वतलाये गये उत्पादन सम्वन्धी सिद्धान्त के अनुसार ही होना चाहिए। अन्ततोगत्वा उपभोक्ताओ की आवश्यकता के सव सामान विकेन्द्रीकृत उद्योगो द्वारा ही तैयार किये जायगे और केन्द्रीकृत उत्पादन और नियन्त्रण सामरिक उद्योगो, पावर के उत्पादन, खानो, धातुओ के उद्योगो, जगलो, भारी यन्त्रो व इजीनियरिंग के कारखानो, औजारो और रासायनिक सामानो आदि तक ही सीमित रहेगा। अव दैनिक आवश्यकता के जो सामान केन्द्रीकृत उद्योगो द्वारा उत्पन्न किए जा रहे है उनको विकेन्द्रीकृत उद्योगो द्वारा तैयार करने के लिए निरन्तर अनुसधान करते रहना चाहिए। केन्द्रीभूत उद्योगो का नया सगठन करना चाहिए, क्योकि हमारा जीवन और समाज जव छोटी ग्रामीण इकाइयो में विभक्त

हो जायगा तब भी हमे केन्द्रीकृत उद्योगो की आवश्यकता तो रहेगी ही। बड़े कारखानो को इस प्रकार योजनापूर्वक ग्रामो में स्थापित कर देने से देश का विकास अधिक समानता के आधार पर हो सकेगा।

खाद्य और अन्य मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाले उद्योगो को विकेन्द्रित कर देना चाहिए और इन वस्तुओ में केन्द्रीकृत उद्योगो द्वारा प्रतिस्पर्धा का तो तुरन्त अन्त कर देना चाहिए। यह ध्यान विशेष रूप से रखना चाहिए कि खेती की पैदावार को तैयार करते हुए उसका पौष्टिक तत्त्व नष्ट न हो जाय। चावल, वनस्पति और चीनी की मिलों में जो तरीके बरते जाते है उन पर यह बात विशेष रूप से लागू होती है।

केन्द्रीभूत उद्योगो को विकेन्द्रीकृत उद्योगो का सहायक मान कर ही चलाना चाहिए, जिससे कि विकेन्द्रीकृत उद्योगो की उत्पादन-शक्ति बढ जाय और उनको औजार तथा कच्चा माल इत्यादि मिलते रहे। केन्द्रीभूत उद्योगो पर स्वामित्व समाज का होना चाहिए और उनका सचालन यथा-सम्भव स्वतन्त्र कॉर्पोरेशनो अथवा सहकारी सस्थाओ द्वारा किया जाना चाहिए। केन्द्रीभूत उद्योगो का राष्ट्रीयकरण हो जाना चाहिए और उनके मुआवजे का निश्चय अधिकतम आय के लिए जो सिद्धान्त निर्धारित कर दिए गए है उनके अनुसार करना चाहिए। यह मुआवजा देने का लक्ष्य उन लोगो का पुनर्वास होना चाहिए जिनसे कि उनकी सम्पत्ति ली जा रही है। जबतक इन उद्योगो का राष्ट्रीयकरण न हो तबतक उनका नियत्रण समाज के और प्राप्तव्य आदर्श के लाभ की दृष्टि मे किया जाना चाहिए। केन्द्रीभूत और विकेन्द्रीकृत उद्योगो मे आजकल जो विनाशक प्रतिस्पर्धा चलती है उसका तुरन्त अन्त कर देना चाहिए। इस प्रयोजन से उत्पादन के कुछ क्षेत्र ग्रामीण उद्योगो के लिए सुरक्षित करके उनकी सहायता प्रतिस्पर्धा करने वाले केन्द्रीभूत उद्योगो पर टैक्स लगाकर करनी चाहिए। केन्द्रीभूत उद्योगो के जो पुरजे आदि घिस जाय उनको फिर बदलना नही चाहिए और न नये यन्त्र लगाने देने चाहिए। इस प्रकार कुछ समय पश्चात् केन्द्रीभूत कारखाने अपने आप समाप्त हो जायगे और उनका स्थान विकेन्द्रीकृत उद्योग ले लेंगे।

मौलिक (बुनियादी) उद्योगो की सगठन-सम्बन्धी और टैक्निकल कुशलता उनकी व्यवस्था को सुधार कर और उनका सचालन बुद्धिपूर्वक करके बढानी चाहिए और उनका नियन्त्रण प्लैनिंग कमीशन के मातहत एक पृथक् कौन्सिल के हाथ मे सौंप देना चाहिए। अब मे पौंड-पावने (स्टर्लिंग बैलेंस) का उपयोग मुख्यतया केन्द्रीभूत उद्योगो को इस प्रकार बुद्धिपूर्वक और अधिक व्यवस्थापूर्वक चलने के लिए यन्त्रादि मगाने में करना चाहिए। हमारे नियन्त्रित अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में यदि कुछ विदेशी मुद्रा बचे तो उसका प्रथम उपयोग इस प्रयोजन के लिए यन्त्रादि मगाने में करना चाहिए। इस प्रकार विदेशी मुद्रा के उपयोग की प्राथमिकता का निश्चय प्लैनिंग कमीशन को करना चाहिए, जो कि कृषि विकेन्द्रीकृत उद्योगो और केन्द्रीभूत उद्योगों का प्रतिनिधि होना चाहिए।

विदेशी कार-बार—हमने जो अर्थ-व्यवस्था निर्धारित की है उसमें विदेशी कार-बारो के लिए कोई स्थान नही—वे चाहे केन्द्रीभूत कारखानो मे उपभोक्ताओ के पदार्थ तैयार करते हो और चाहे आधारभूत उद्योगों का सामान बनाते हों। जिस प्रकार उपभोक्ताओ की आवश्यकताए पूर्ण करने वाले केन्द्रीभूत देशी कारखाने टैक्स लगाने, सरकारी सहायता देने और उत्पादन को नियन्त्रित करने की योजनाओ के अनुसार क्रमश समाप्त हो जायगे और मौलिक उद्योगो के कारखाने राष्ट्र की सम्पत्ति बन जायगे, उसी प्रकार विदेशी कार-बार भी या तो समाप्त हो जायगे और या उनका राष्ट्रीयकरण हो जायगा। इस मामले में विदेशी कारबारियो के पक्ष या विपक्ष में कोई भेद नही करना चाहिए।

आर्थिक सिविल सर्विस—राष्ट्रीयकृत उद्योगो का भलीभाति विकास करने के लिए उपयुक्त शासन-सगठनो की स्थापना करनी चाहिए। निम्न मामलो पर तुरन्त ही विशेष ध्यान देना चाहिए।

१ आर्थिक सिविल सर्विस की स्थापना जो कि उद्योगो के लिए विविध ग्रेडो के कार्यपालक (एग्जेक्यूटिव) कर्मचारी मुहैया करेगी। वर्तमान केन्द्रीभूत उद्योगो के मालिको के अनुभव और व्यवस्था-सम्बन्धी योग्यता का, उन्हें प्रस्तावित आर्थिक

सिविल सर्विस में खपा कर, इस काम के लिए उपयोग किया जा सकता है।

२ आवश्यक औद्योगिक अधिकारियो का प्रशिक्षण।

३ कार्यकर्ताओ का टेक्निकल प्रशिक्षण और साधारण शिक्षण ।

४ दुर्लभ और सामरिक आवश्यकताओ के साधनो का नियन्त्रण।

५ आर्थिक साधनो का विस्तृत व सूक्ष्म सर्वे (अध्ययन और निरीक्षण)।

औद्योगिक अनुसन्धान—मौलिक (बुनियादी) उद्योगो में सगठन कुशलता और टेक्निकल साधनो की उन्नति सुनिर्दिष्ट औद्योगिक अनुसधान पर ही निर्भर करती है। अब तक अनुसन्धान का लक्ष्य केन्द्रीभूत उद्योगो का नफा बढाना ही रहा है। अब इस अनुसन्धान के कार्य का सचालन इस प्रकार होना चाहिए कि केन्द्रीकृत उद्योग विकेन्द्रीकृत उद्योगो की सगठन-कुशलता और उत्पादन-कुशलता की वृद्धि में सहायक हो और वे समाज की सेवा का साधन बन जाय। अनुसन्धान का लक्ष्य यह भी होना चाहिए कि केन्द्रीकृत उद्योगो का सगठन उन्हे छोटी इकाइयो मे बाट कर और उनका ग्रामीण क्षेत्रो में इस प्रकार विस्तार करके किया जा सके कि छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धे इन केन्द्रीकृत उद्योगो के सहायक बन जाय।

विकेन्द्रीकृत ग्रामीण उद्योग—इन उद्योगो का लक्ष्य प्रादेशिक स्वावलम्बन होना चाहिए। इन्हें सब लोगो को विविध रोजगारो में लगाने में और अपने प्रदेश के प्राकृतिक साधनो का उपयोग करने में समर्थ होना चाहिए।

इन उद्योगो की उन्नति औद्योगिक सहकारी सस्थाओं द्वारा इस प्रकार की जानी चाहिए कि स्थानीय लोग ही उनके लिए कच्चा माल मुहैया करें और वे अपने सदस्यो को माल के उत्पादन और विक्रय में मार्ग-प्रदर्शन करती रहे। यदि सम्भव हो तो उनके लिए सम्मिलित कारखाने और उत्पादन की सुविधाए दी जाय। स्थायी प्लैनिग कमीशन के आधीन एक पृथक कौन्सिल इन उद्योगो के मार्ग-प्रदर्शन और सगठन के लिए होना चाहिए। इस सारे कार्य का लक्ष्य, एक ऐसे सघीय सगठन का निर्माण है

जिसकी इकाइया प्रारम्भिक पचायते, प्रादेशिक यूनियनें, और ऐसोसिएशन आदि होगे।

इन उद्योगो को कुशलता, जहा बिजली मिल सके वहा सब कारीगरो को बिजली देकर और ऐसे यान्त्रिक साधनो का उपयोग करके जिनसे कि सबको रोजगार मिलने में बाधा न हो, बढाई जा सकती है।

यदि कारीगर और श्रमिक कच्चा माल प्राप्त करने और तैयार माल बेचने की परेशानियो से आज़ाद रहेंगे तो वे अपना सारा ध्यान उत्पादन पर लगा सकेंगे।

जिन अनेक उद्योगों को शुरु-शुरु मे ऋण अथवा सहायता की आवश्यकता होगी उनके लिए इनकी व्यवस्था प्लैनिग कमीशन के मातहत लैण्ड-कौन्सिलें और विकेन्द्रीकृत उद्योगो की कौन्सिल, औद्योगिक सहकारी सस्थाओ द्वारा करेंगी।

विकेन्द्रीकृत उद्योगो की उन्नति के लिए निम्न उपायो का तुरन्त ही अवलम्बन किया जा सकता है.

सरकार और सार्वजनिक सस्थाए यथाशक्ति ग्रामीण उद्योगो के माल का ही उपयोग करे। गृह और ग्रामीण उद्योगो के लिए आवश्यक कच्चे माल, औजारो और उनके तैयार माल को औक्ट्रोय, टर्मिनल टैक्स (चुगी), बिक्री टैक्स और अन्य इसी प्रकार की देनदारियो से मुक्त रखा जाय। इन उद्योगो को जगल की पैदावार स्टैण्डर्ड दरो पर मुहैया करने में पहल दी जाय। सरकार जगलो के माल पर टैक्स लगाने में मुख्य ध्यान अब तक अपनी आमदनी का रखती है। उसे चाहिए कि वह उस नीति को बदल कर लोगो की आवश्यकता के माल तैयार कराना अपना लक्ष्य रखे। ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि इन उद्योगो को लोहे, कोयले, कास्टिक सोडा, और अन्य कैमिकलो आदि जिन सामानो की कमी रहती हो वे इन्हें औरों से पहले दिये जाय। जब प्लैनिग कमीशन विकेन्द्रीकृत उद्योगो की कौन्सिल के साथ मिलकर अपना काम पूरी तरह करने लगेगा तब इस प्रकार की पहल का निश्चय करना सरल हो जायगा। इन उद्योगो का

विकास ठीक प्रकार के नेताओ के मिलने पर बहुत निर्भर करता है। इसलिए सगठन-कर्ताओं, टैक्निशियनो और व्यस्थापकों का एक वर्ग उचित शिक्षण द्वारा तैयार किया जाना चाहिए। रूरल इकौनोमिक सिविल सर्विस को ऐसे स्त्री और पुरुष तैयार करने चाहिए जो विकेन्द्रीकृत उद्योगो की सेवा भली भाति कर सकें।

उद्योगों में मालिक मजदूर सम्बन्ध--जब हमारी औद्योगिक व्यवस्था का आधार विकेन्द्रीकृत और राष्ट्रीय मिलकियत के केन्द्रीकृत कारखाने हो जायगे तब मालिको और मजदूरो के सम्बन्धो की समस्या आपसे आप बहुत सरल हो जायगी। विकेन्द्रीकृत कारखानो में भाडे या मजदूरी पर रखे हुए मजदूर बहुत कम होगे। और चूकि वे मजदूर नजदीकी सामाजिक सम्बन्धो के वातावरण में काम करेंगे इसलिए मजदूरो के दोहन का अवसर ही कठिनाई से कोई आयगा।

सार्वजनिक स्वामित्व में सचालित केन्द्रीकृत उद्योगो में कार्यकर्ताओ को सरकारी नौकरी की सब सुविधाओ और अधिकारो की सहूलियत उपलब्ध रहेंगी। इन उद्योगो के प्रबन्ध मे भी उनका हाथ रहेगा।

परिवर्तन-काल में श्रमिको को लाभ में भाग देकर और प्रबन्ध में उनका प्रतिनिधित्व रख कर श्रम और पूजी में मित्रतापूर्ण सम्बन्धो को बढाना चाहिए। प्रत्येक उद्योग कीप्रतिदिन की व्यवस्था-समस्याओ को हल करने के लिए वर्क्स कमेटियो को और मजदूरी का तथा काम की अवस्थाओ का निश्चय करने के लिए प्रादेशिक श्रमिक बोर्डो को सगठित करते हुए, उनमें श्रमिको के निर्वाचित प्रतिनिधियो को उचित अनुपात में सम्मिलित करने का ध्यान रखा जाना चाहिए। उत्पादन में निरन्तरता रखने और विघ्न न पडने देने के लिए आवश्यक है कि मालिको और मजदूरो के सब झगडे आपसी समझौते, पच-फैसले और मध्यस्थता द्वारा हल किये जाय। कार्यकर्ताओ को न्यूनतम वेतन, उचित मकान और बुढापे, बीमारी और बेरोज़गारी के कारण होने वाली आर्थिक कठिनाइयो से रक्षा की गारण्टी दी जानी चाहिए।

बैंक, बीमा और मुद्रा

साधारण अर्थो मे आर्थिक योजना का विचार आरम्भ करते ही वडे पैमाने पर पूजी के सग्रह और विनियोग का प्रश्न सामने आ खडा होता है। परन्तु हम जिन विकेन्द्रित ग्रामीण उद्योगो की योजना पेश कर रहे है उनमें समस्या पूजी की अपेक्षा श्रमिको की अधिक है। तथापि इतने वडे क्षेत्र मे कार्य करने पर पूजी का विनियोग तो होगा ही। परन्तु वह होगा वहुत फैल कर और क्योकि हमारी योजना के अनुसार जो केन्द्रीभूत उद्योग उपभोक्ताओ के सामान तैयार करते है उनमे घिसे हुए पुरजो आदि को वदलने की इजाजत नही दी जायगी। इसलिए अभी इन उद्योगो में जो पूजी लग रही है वह विकेन्द्रीकृत उद्योगो के लिए सामान मुहैया करने के लिए मिल सकेगी। पूजी की वचत इस प्रकार भी होगी कि व्यापार को यथाशक्ति स्वावलम्वी प्रदेशो मे सीमित और सगठित कर दिया जायगा और उनमे भी लेन देन अधिकतर विविध काम करने वाली सहकारी सस्थाओ द्वारा अदले-वदले के आधार पर होगा।

इसके विपरीत खेती और आधारभूत उद्योगो के लिए पूजी की वडे परिमाण मे आवश्यकता होगी, क्योकि हमारी अर्थ-व्यवस्था के अनुसार रहन सहन का स्तर ऊचा करने के लिए उनकी टैक्निकल कुशलता को वढाना आवश्यक होगा। कृषि की उन्नति करने के लिए फसलो और पशुओ का वीमा सगठित करना होगा। वीमे के प्रीमियम नकदी के स्थान पर माल के रूप में वसूल किये जायगे।

तात्कालिक कार्यक्रम यह होना चाहिए कि सामूहिक परिमाण पर वचत की जाय और पूजी के विनियोग को कृषि और विकेन्द्रीकृत उद्योगो के लाभ की दृष्टि से नियन्त्रित किया जाय और अन्ततोगत्वा वैको और वीमा कम्पनियो का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय, जिससे कि राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था की वडे-वडे पूजीपतियो के दोषपूर्ण जोड-तोडो से रक्षा हो सके। रूरल फाइनैन्स वोर्ड (ग्रामीण आर्थिक वोर्ड) के अधीन विविध कार्य करने वाले सहकारी सस्थाओ का देशव्यापी जाल होना चाहिए, जिसकी पहुच समाज के निम्नतम स्तर तक हो। इन सस्थाओ को गरीव-से-गरीव

आदमियो की बचत का भी उपयोग करने में समर्थ होना चाहिए। पूजी-विनियोग और उत्पादन की समस्याए एकमात्र इस प्रकार के सगठन से ही हल हो सकती है। सामूहिक रूप में बचत का आरम्भ, पूजी के सग्रह और विनियोग का प्रादेशिक आधार पर सगठन करके करना चाहिए। शहरी इलाको की बचत का विनियोग सरकारी ऋणो में करना चाहिए और उन ऋणो का इन्डस्ट्रियल फाइनैन्स कोर्पोरेशन की मार्फत सार्वजनिक स्वामित्व के केन्द्रीकृत उद्योगो मे लगाना चाहिए।

हमारा उद्देश्य यह है कि अर्थ-व्यवस्था के प्रत्येक विभाग मे मुद्रा का उपयोग यथाशक्ति कम कर दिया जाए। इस समय आर्थिक विषमता का प्रधान कारण 'मुद्रा का आवरण' (लेन देन का नकदी आधार) ही है। स्वावलम्बी विकेन्द्रित आर्थिक जीवन में आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन बहुत घट जायगा। और जो होगा वह भी अधिकतर अदले-बदले के द्वारा होगा। मजदूरिया और टैक्स भी यथाशक्ति माल के रूप में ही दिए जायगे। कृषि तथा उद्योगो के लिए ऋण विशेष प्रयोजनो से ही दिया जाएगा। फलत नकदी का उपयोग न्यूनतम हो जायगा। जब खलिहानो का और नमक, सूत तथा लोहे के स्थानीय गोदामो सरीखी विकेन्द्रित सस्थाओ का विकास हो जायगा और रूरल क्रैडिट बोर्ड तथा इन्डस्ट्रियल फाइनैन्स कोर्पोरेशन क्रमश कृषि तथा विकेन्द्रीकृत सार्वजनिक स्वामित्व के केन्द्रीभूत उद्योगो में योजनापूर्वक पूजी और बचत का उपयोग करने लगेंगे और मुद्रा तथा ऋण का उचित नियन्त्रण सैन्ट्रल बैंक करने लगेगा तब बाजार में न कभी तेजी आयगी न कभी मन्दी, और तब मुद्रा का विस्तार माल के विस्तार के अनुसार ही होने लग जायेगा।

वितरण

घरेलू लेन-देन—ज्यो-ज्यो प्रादेशिक स्वावलम्बिता का विकास होता जायगा त्यो-त्यो अन्त प्रादेशिक व्यापार की आवश्यकता आप-से-आप घटती जायगी। परन्तु प्रादेशिक इकाइयो की स्वावलबिता स्वभावत विविध वस्तुओ के अनुसार विविध होगी। किसी वस्तु के लिए इकाई

ग्राम अथवा तालुका होगा और किसी के लिए कुछ ग्रामो का समूह। प्रादेशिक आर्थिक इकाई अपनी विविध काम करने वाली सहकारी सस्थाओ के द्वारा केवल उन वस्तुओ को बाहर भेजेगी जो उसके पास फालतू होगी अथवा जिनको वह अपेक्षाकृत सस्ता तैयार कर सकेगी। इसी प्रकार जिन वस्तुओ को वह अपेक्षाकृत सस्ता तैयार नही कर सकेगी और जो उसके जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक होगी उनको वह अपनी विविध काम करने वाली सहकारी सस्था के द्वारा बाहर से मगावेगी। शहरी इलाको से ग्रामीण इलाको को जो वस्तुए जाय उनका नियत्रण विविध काम करने वाली सहकारी सस्थाओ के मार्फत ही होना चाहिए। सरकारी और गैर-सरकारी आधार पर, जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओ में प्रादेशिक इकाइयो को स्वावलम्बी बनाने की सम्भावना के अनुसन्धान का कार्य तुरन्त ही हाथ मे लिया जाना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार—जिन वस्तुओ के बिना राष्ट्र का काम चल सके उसका आयात बिल्कुल नही करना चाहिए। देश का वैदेशिक व्यापार प्लैनिग कमीशन के अधीन एक पब्लिक कार्पोरेशन के सुपुर्द कर देना चाहिए। जहा तक हो सके वहा तक आयात की हुई वस्तुओ का वितरण सहकारी सस्थाओ की मार्फत करना चाहिए। जिन कच्चे मालो और सामरिक उपयोगिता की वस्तुओ का उपयोग देश मे हो सके उनका निर्यात नही करना चाहिए। यदि प्लैनिग कमीशन सिफारिश करे तो विदेशी पूजी को सरकारी ऋण के रूप में आने दिया जा सकता है। परन्तु वह ऋण भी ससार के बैक से ही लेना चाहिए। व्यापार के सम्बन्ध उन्ही विदेशो के साथ बढाने चाहिए जो कि हमारी अर्थ-व्यवस्था के सहायक हो, समृद्धि एक अविभाज्य वस्तु है और इसलिए हमारा विश्वास है कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से ससार के विविध देशो के विकास में भी सहायता मिलेगी।

परिवहन और सन्देश-संचार

व्यापारिक और आर्थिक कारणो से सडको और रेलो का विस्तार अत्यधिक बढ गया है। अहिंसामय विकेन्द्रीकृत समाज में मार्ग-निर्माण

की योजना का आधार सर्वथा विभिन्न होगा। रेलो, सडको, आन्तरिक जल-मार्गो, तटवर्ती जहाज-मार्गो, डाक और तार और हवाई यातायात सरीखे सार्वजनिक साधनो का सगठन इस प्रकार होना चाहिए कि मुख्य दृष्टि ग्राम पर रहे। विकेन्द्रीकृत अर्थ-व्यवस्था मे माल ढोने के साधनो (परिवहन) पर, विशेषत रेलो और पक्की सडको पर, बोझ बहुत कम पडेगा। मानव और पशु-शक्ति का पूरा-पूरा काम देने के लिए देहातो में माल ढोने का मुख्य साधन बैलगाडी को ही रखना चाहिए। इस समय पक्की ट्रक सडको की नितान्त आवश्यकता नही है। परन्तु गावो तक पहुचने वाली सडको और आन्तरिक जल-मार्गो के निर्माण पर बल दिया जाना चाहिए। आन्तरिक जल-मार्गो से तीन लाभ होते है। उनसे मल्लाहो को रोजगार मिलता है, वे माल ढोने के लिए सस्ते पडते है, और उनसे खेतो की सिचाई भी होती है।

प्रादेशिक स्वावलम्बन का अर्थ सब तरफ से सम्बन्धो का तोड लेना नही है। इसलिए जहा तक हो सके वहा तक देहातो मे डाक, तार और टेलीफोन की सहूलियतो का विस्तार करना चाहिए।

अबतक रेलो के दर इस प्रकार निर्धारित किए जाते रहे हैं कि उनसे विकेन्द्रीकृत ग्रामीण उद्योगो को बहुत हानि हुई है। इसलिए तुरन्त ही स्वावलम्बिता को लक्ष्य में रखकर काम करना चाहिए। रेल, डाक, तार, जहाज और वायुयान आदि सार्वजनिक उपयोग के साधनो का स्वामित्व यथाशक्ति जनता के हाथ मे होना और उनका प्रबन्ध प्रादेशिक सस्थाओ की मार्फत केन्द्र के हाथ में रहना चाहिए।

स्वास्थ्य और सफाई

यह मानना पडेगा कि स्वास्थ्य की समस्या डिस्पेन्सरियो और हस्पतालो का जाल फैलाकर हल नही की जा सकती। ये वस्तुए राष्ट्रीय आय पर भारी बोझ होती हैं और पेशेवर डाक्टरो ने इनको सेवा की सस्थाओ के स्थान पर आमदनी और व्यापार का केन्द्र बना लिया है। हमारे समाज के वर्तमान सगठन में तो हमारी स्वास्थ्य-सेवाओ पर अधिकार

ही अपने स्वार्थ के लिए दूसरो से लाभ उठाने वाले व्यक्तियो का हो गया है।

पहली बात यह है कि लोगो को अपना स्वास्थ्य आप ठीक रखने और बीमार न होने की शिक्षा देनी चाहिए। उन्हे स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे निम्न मौलिक सिद्धान्तो का शिक्षण देना चाहिए —

सफाई—सफाई मे अपने शरीर और अपने अडोस-पडोस के स्थान की भी सफाई शामिल है। उसमे घर के गन्दे पानी और कूडे करकट को ठिकाने लगाने की बात विशेष रूप से शामिल है। इस कूडे करकट से, मल मूत्र से और गाव के गोबर आदि से कम्पोस्ट का बनाना भी इसीमें शामिल है। यदि गावो मे पशु बाधने के स्थानो की व्यवस्था भली-भाति कर ली जाय तो यह कार्य सरल हो जायगा।

भोजन-शास्त्र—इस समय हमारे देश की जनता के भोजन का प्रधान भाग अनाज है। स्वास्थ्य और शक्ति को भली-भाति सुरक्षित रखने के लिए भोजन का उचित रूप से सन्तुलित होना आवश्यक है। इस प्रयोजन की सिद्धि लोगो मे सन्तुलित भोजन की आदत डालकर ही की जा सकती है। लोगो को यह सिखाने की आवश्यकता है कि खाद्य-वस्तुओ का पौष्टिक तत्व नष्ट किए बिना भोजन किस प्रकार पकाना और तैयार करना चाहिए। औषधियो की आवश्यकता साधारणतया शरीर की न्यूनताओ को पूरा करने के लिए ही हुआ करती है। भोजन-शास्त्र की दृष्टि से ठीक-ठीक भोजन करने पर हम लोगो का निरोध और इलाज स्वय कर सकेगे। गावो के लोगो को आजकल बहुधा रोग गलत अथवा निरन्तर एक-सा भोजन करने के कारण होते है। शरीर को निर्बल करने वाले मलेरिया सरीखे रोगो का प्रतिरोध भली-भाति हो सकता है यदि लोग ऐसे सन्तुलित भोजन करने का अभ्यास कर लें जिन्हें वे उपलब्ध साधनो द्वारा ही अपने घरो मे तैयार कर सकते है।

काम-वासना का दमन—भारत की ग्रामीण जनता की एक समस्या यह है कि उन्हे पौष्टिक भोजन नही मिलता और उसकी सृजन करने की शक्तिया दबी रहती है। इसका एक परिणाम काम-वासना का बढ जाना

जाता है कि उन्हे सीखकर ग्रामवासी अपने जीवन को स्वावलम्बी बना सकें। इस नवीन शिक्षण-पद्धति में मानसिक शिक्षण का भाग न्यूनतम कर दिया जाता है। इसमें विद्यार्थी को ऐसी कोई बात नही सिखलाई जाती जो कि आधारभूत जीवन के साथ प्राकृतिक रूप से सम्बद्ध आवश्यकताओ से अपने-आप उद्भूत न होती हो।

इस प्रकार इस शिक्षण-पद्धति मे एक ओर प्रकृति का अध्ययन और दूसरी ओर मानव समाज का अध्ययन एक दूसरे के साथ इस प्रकार गुथ जाते है कि इनसे जीवन को समझने में सहायता मिलती है। और मनुष्य केवल इस प्रकार अपने जीवन के उद्देश्य को ठीक-ठीक समझ सकता है।

वुनियादी तालीम सास्कृतिक और दस्तकारी के शिक्षण का समन्वय है।

जिस समाज में युवको को सदा एक दूसरे का मुकावला करने, लडने और एक दूसरे को जीतने का शिक्षण दिया जाता हो उसमें सदाचार का मूल्य सिखाने की वहुत आशा नही रखी जा सकती। शक्ति, अधिकार, हकूमत और अपने वडप्पन के लिए दिए हुए शिक्षण की, उस शिक्षण के माथ कोई सगति नही वैठ सकती जो मन, हृदय और भावनाओ के विकास के लिए दिया जाने वाला हो।

मसार के महान् धर्मो की शिक्षाए इसी प्रकार की शिक्षण-पद्धति में सम्मिलित की जा सकती है जिनका लक्ष्य मन्तोष, स्वावलम्वन और मदाचार और सहकारिता हो। धर्मो और सस्कृतियो के अतिरक्त, लोभ-लालच और स्वार्थमय सघर्षो ने मानव-ममाज को हिंसात्मक जीवन का नियम मानना मिखला दिया है। अहिंसामय ममाज इस प्रक्रिया को उलट देगा। वह सव धर्मो को समान रूप से मत्य और उन्नति तथा पूर्णता कराने में ममर्थ मानकर चलेगा। नई शिक्षण पद्धति का लक्ष्य ऐमी मानवता होगी जिमका आधार अपरिग्रह, अहिंमा और मत्य होगे।

प्रारम्भ मे शिक्षण उम ही भाषा द्वारा दिया जायगा जिसे लोग वोलते है। इम वात की कोई परवाह नहीं की जायगी कि वे भाषाए भली भाति उन्नत है या नही। उच्च शिक्षण में देश की राष्ट्रीय भाषा का प्रयोग किया जायगा।

सामूहिक कार्यों के लिए अनुशासन का अभ्यास वुनियादी तालीम का आवश्यक भाग होगा। परन्तु शिक्षण के क्षेत्र पर सैनिक शिक्षण को आक्रमण नही करने दिया जायगा।

व्यक्ति, राज्य और समाज

अहिंसामय समाज में माल के उत्पादन, शासन के नियन्त्रण और राजनीतिक अधिकार के मामलो में अधिकतम विकेन्द्रीकरण होना चाहिए।

आज समाज के अधिकारो के विकेन्द्रीकरण की प्राय. सर्वत्र चर्चा है। ऊपर पहुच कर भीड से वचने के लिए और लोकतन्त्र को प्रभावशाली वनाने के लिए ऐसा यत्न किया जा रहा है कि अधिकाधिक शक्ति शासन के ऊपर की इकाइयो से लेकर नीचे की इकाइयो के और गैर-सरकारी सगठनो के हाथ मे सौंप दी जाय।

परन्तु शासन के अधिकार सौंपने के मामले में हमारी प्रवृत्ति ऊपर लिखे हुए विचार से मूलत भिन्न है। वर्तमान व्यवस्था मे शक्ति और अधिकार ऊपर से नीचे की ओर को चलते है। इसके विपरीत हमारा विचार यह है कि अधिकारो का उद्भव शासन की आधारभूत इकाइयो मे होकर उन्हे नीचे से ऊपर की ओर को वढना चाहिए।

देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् जो वादविवाद और झगडे खडे हो गये है उन्हें हम भली भाति जानते है। हम एक केन्द्रिक सरकार के नियन्त्रण में राष्ट्र की एकता और स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने की आवश्यकता अनुभव करते है, परन्तु साथ ही हम यह भी अनुभव करते है कि जो सरकार व्यक्तियो के विचार और वुद्धि को स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने का अवसर नही देती और जो साधारण जनो की सूझ-बूझ का उपयोग नही करती उसका वल वह वल नही हो सकता जो कि उस शासन का होता है जिसे कि लाखो करोड़ो जनता का वुद्धिपूर्वक सहयोग और उसकी विविध सस्कृतियो तथा विकास की शक्तियो की सहायता का लाभ मिलता रहता है। इसलिए हमारा कथन यह है कि ग्राम-पचायतो को शासन की प्रारम्भिक इकाइया मानकर उनको शासन के पर्याप्त अधिकार देने चाहिए। अन्य

सामाजिक अभिलाषाओ की पूर्ति के लिए और सामाजिक सहयोग के लिए मनुष्य जितना अधिक राज्य पर निर्भर करेगा उतना ही वह समाज से दूर हटता जायगा। विकेन्द्रीकृत समाज-व्यवस्था में अधिकाधिक समस्याओ का हल स्थानीय इकाइयो द्वारा किया जाता है। व्यक्ति शासन में सीधा और सोच समझ कर भाग लेता है और राज्य की इच्छा की पूर्ति करवाने के लिए, विरोधियो को, सगठित सामाजिक जीवन के लाभो से वचित कर दिया जाता है। इस प्रकार के समाज में ऐसी सस्थाओ का निर्माण किया जायगा जो कि राज्य की दमनकारी शक्ति के सहारे से नहीं, अपितु प्रेम, अहिसा, असहयोग और सत्याग्रह के वल मे अपना कार्य सफल करेंगी। इस प्रकार का समाज सगठित करने का अर्थ पुराने ग्राम-समाज अथवा नगर-राज्य (सिटी-स्टेट) की ओर को लौटना नही है, अपितु यह मनुष्य के उम मघर्प की यशस्वी सफलता है जो कि वह व्यक्ति और समष्टि में समन्वय करने के लिए युगो से करता चला आ रहा है।

पुलिस और सेना के शासन में सरकार द्वारा अहिसा का अधिकाधिक प्रयोग—सेना द्वारा रक्षा कराने मे हमारा विश्वास नही है। हम आरम्भ में ही यह स्पप्ट कर देना चाहते है कि हमारा परम लक्ष्य सेना के स्थान पर अहिसामय रक्षा को प्रतिष्ठित करना है। जीवन और सम्पत्ति का विनाश, दुख और खेद की वस्तुए है, यश और अभिमान की नही। इसलिए सैनिको को प्रतिप्ठित और सम्मानित करने की परम्परा तुरन्त समाप्त कर देनी चाहिए और उसके स्थान पर अहिसापूर्वक रक्षा करते हुए साहम, दृढता, सहिष्णुता और स्वार्थत्याग के जिन उत्कृप्ट गुणो का प्रकाशन हो उनका सम्मान किया जाना चाहिए।

परन्तु हमें मानना पडता है कि आज की परिस्थिति में मरकार तुरन्त सेनाओ की ममाप्ति के आदेश पर आचरण नही कर मकेगी। परन्तु परिवर्तन-काल में भी अहिमापूर्वक प्रतिरोध की भावना जागृत करने के लिए तत्काल प्रभावशाली उपायो का अवलम्बन किया जाना चाहिए। इसके लिए ईमानदारी, सार्वजनिक भावना, स्वार्थत्याग और अनुशासन के गुणो की अत्यन्त और मौलिक आवश्यकता है।

हमारा विश्वास है कि आर्थिक और राजनैतिक अधिकारो के विकेन्द्रीकरण से अहिंसापूर्वक रक्षा करने की अवस्थाए स्वयमेव उत्पन्न हो जायगी। इन अवस्थाओ को जनता को अहिंसापूर्वक अनुशासन मे रहने के लिए शिक्षित करके, शान्ति-सेनाओ का सगठन करके और अवतक जिन परिस्थितियो में हिंसामय उपायो का प्रयोग किया जाता है उनमें समय-समय पर अहिंसामय कार्रवाई करके उन्नत किया जा सकता है। तबतक इस दिशा में क्रमश सैनिक व्यय घटा कर और स्थायी सेना के स्थान पर प्रादेशिक सेनाओ का सगठन करके आगे बढना चाहिए।

कालान्तर मे इन प्रादेशिक सेनाओ का स्थान भी शान्ति-सेनाए ले लेगी।

पब्लिक फाइनैन्स (सार्वजनिक कोष)

विकेन्द्री-कृत उत्पादन और राजनैतिक अधिकारो का आधार विकेन्द्रीकृत अर्थ-व्यवस्था होना चाहिए। शासन की प्रारम्भिक इकाइयो का स्वशासन वास्तविक और प्रभावशाली बनाने के लिए ऐसी व्यवस्था करनी पडेगी कि प्रादेशिक इकाइयो में सार्वजनिक आय का अधिकतर सग्रह और व्यय वे ही करें। हमारा लक्ष्य ऐसी अर्थ-व्यवस्था को विकसित करना होना चाहिए जिसमे कि सार्वजनिक आय का ५० प्रतिशत सग्रह और व्यय ग्राम-पचायतें ही करें। शेष पचास प्रतिशत उनसे ऊपर के सगठनो के लिए छोड देना चाहिए। केन्द्रिक सरकार को टैक्स लगाने का कोई अधिकार नही होना चाहिए। उसे अपनी आमदनी के लिए सार्वजनिक स्वामित्व केन्द्रीभूत उद्योगो और रेल, बिजली, डाक, तार, हवाई यातायात और मुद्रा आदि सार्वजनिक उपयोग के साधनो पर करना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो प्रान्त भी केन्द्र को कुछ आर्थिक सहायता दे सकते है।

टैक्सो की अदायगी नकदी, माल और मजदूरी के रूप में की जा सकती है। जमीन लगान माल के रूप मे ही अदा किया जायगा। जमीन-लगान माल के रूप मे एकत्र करने की कठिनाई को विविध काम करने वाली सहकारी सस्थाए और प्रत्येक ग्राम में एक अनाज-बैंक सगठित करके हल कर लिया

जायगा। स्थानीय अधिकारियो के वेतनो का अधिकतर भाग माल के रूप में ही दिया जायगा। प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारो के उच्च अधिकारियो को भी वेतन का कुछ भाग माल के रूप में दिया जा सकेगा। ग्राम-पचायतो के आधीन लगान की मजदूरी के रूप मे अदायगी का लाभ यह होगा कि गरीब-से-गरीब आदमी भी बिना किसी कठिनाई के सरकारी कोष में अपना भाग दे सकेगा। जिस अर्थ-व्यवस्था को हम पुरस्कृत कर रहे हैं उसमें ऊची आमदनिया समाप्त हो जायगी और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार न्यूनतम हो जायगा। फलत इन्कमटैक्स और कस्टम से होनेवाली सरकारी आमदनी घट जायगी। परन्तु गरीब-से-गरीब आदमी की अदायगी सरकारी कोष में मजदूरी द्वारा पहुचने के कारण, राजकोष में नकदी का परिमाण कम हो जाने पर भी उसमें वास्तविक धन भरपूर रहेगा। अन्ततोगत्वा वास्तविक धन तो मजदूरी ही है। हमारे देश की प्राथमिक आवश्यकताए अस्पतालो, सड़को और स्कूलो की हैं। उन्हें लोग अपनी मेहनत से बनायगे। इसलिए उनको बनवाने में राज्य को खर्च कम पड़ेगा। इसके अतिरिक्त शासन बहुत सरल हो जाने के कारण खर्चो मे बहुत कमी हो जायगी। और ज्यो-ज्यो अहिंसा पर अमल होने लगेगा त्यो-त्यो पुलिस और सेना की तनख्वाहो का खर्च भी घटता जायगा। जब पुलिस और सेना से काम नही लिया जायगा तब उनको अपनी खाद्य और अन्य वस्तुओ की आवश्यकताए स्वय पूरा करने के काम मे लगा कर सरकारी खर्च तुरन्त घटाया जा सकेगा। बुनियादी तालीम का आरम्भ हो जाने पर और स्वास्थ्य की आवश्यकताए प्राकृतिक रहन-सहन तथा लोगो के सरल उपायो से इलाज द्वारा पूरी होने पर, शिक्षा और स्वास्थ्य सार्वजनिक आय के ऊपर बोझ नहीं रहेंगे।

केन्द्रीभूत अर्थ-व्यवस्था से विकेन्द्रीकृत अर्थ-व्यवस्था मे परिवर्तन का कार्य बहुत सरल हो जायगा यदि सार्वजनिक अर्थ-व्यवस्था को केवल कर्तव्य और आवश्यकता की दृष्टि से देखा जाय।